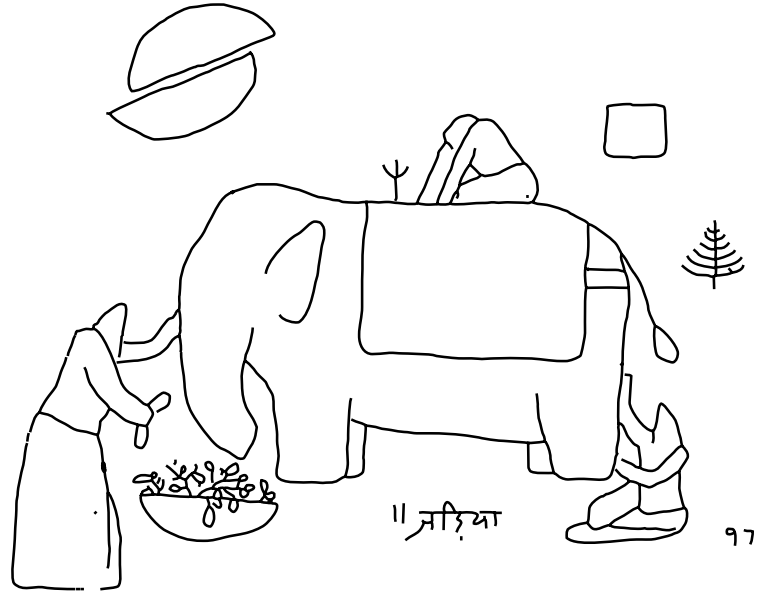


ISSN-2250-2335

समीचीन

(साहित्य-समाज-संस्कृति और राजनीति के खुले मंच की अर्द्ध वार्षिक-अव्यावसायिक पत्रिका)



20

वर्ष-11, अंक-20, जनवरी-जून, २०१८ मूल्य - 25 रुपए पूर्णांक-59
संपादक : देवेश ठाकुर

With best wishes from :



CREATIVE EYE LTD.

CORPORATE OFFICE : 'KAILASH PLAZA' PLOT NO. 12-A, NEW LINK ROAD.
OPP. LAXMI IND. EST, ANDHERI (W), MUMBAI-400 053.
Tel. : 26732612-15 • Fax26315024
E-mail : dk@creativeeye.vsnl.net.in • visit our Website : www.creativeeye.com

समीचीन

(साहित्य-समाज-संस्कृति और राजनीति के खुले मंच की अर्द्ध वार्षिक-अव्यावसायिक पत्रिका)

प्रबंध संपादिका :

डॉ. रोहिणी शिवबालन

संपादक-प्रकाशक :

डॉ. देवेश ठाकुर

संयुक्त संपादक :

डॉ. सतीश पांडेय

उप संपादक :

डॉ. प्रवीण चंद्र बिष्ट

संपादकीय-संपर्क :

बी-23, हिमालय सोसाइटी, असल्फा,
घाटकोपर (पश्चिम), मुंबई-400 084
टेलिफोन : 25161446
Email : sameecheen@gmail.com

विशेष :

‘समीचीन’ में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार संबद्ध रचनाकारों के हैं। संपादक-प्रकाशक की उनसे सहमति आवश्यक नहीं है। सभी विवादों का न्याय-क्षेत्र मात्र मुंबई होगा। सभी पदाधिकारी पूर्णरूप से अवैतनिक।

विद्वत् परीक्षक मंडल : (Peer Review Team)

- डॉ. शरेशचंद्र चुलकीमठ
पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़
- डॉ. अरुणा दुबलिश
पूर्व प्राचार्य, कनोहरलाल महिला स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, मेरठ (उ. प्र.)
- डॉ. पुष्पारानी
अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, हरियाणा
- डॉ. नरेंद्र मिश्र
हिंदी विभाग,
जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक : देवेश ठाकुर ने प्रिंटोग्राफी सिस्टम (इंडिया) प्रा. लि., १३/डी, कुर्ला इंडस्ट्रियल एस्टेट, नारी सेवा सदन रोड, नारायण नगर, घाटकोपर (प.), मुंबई-400086 में छपवाकर बी-23, हिमालय सोसाइटी, असल्फा, घाटकोपर (प.), मुंबई-400084 से प्रकाशित किया।

संपादक : देवेश ठाकुर

वर्ष-11,

मूल्य - 25 रुपए

अंक-20,

पूर्णांक-59

इस अंक में	पृष्ठ
<input type="checkbox"/> सूर्यबाला पर केंद्रित पेज	५
<input type="checkbox"/> अपने तई (संपादकीय)	६
<input type="checkbox"/> मंगलेश डबराल का परिचय	८
<input type="checkbox"/> विरोधाभासी समय में व्यवस्था-विरोध आस्था की कविताएँ डॉ. सतीश पांडेय	१०
<input type="checkbox"/> यातना का प्रतिकार प्रेम पंकज चतुर्वेदी	२१
<input type="checkbox"/> मंगलेश डबराल कृत 'आवाज भी एक जगह है' काव्य संग्रह का यथार्थबोध- डॉ. सत्यवती चौबे	३५
<input type="checkbox"/> सामाजिक अभिव्यक्ति का प्रामाणिक दस्तावेज 'पहाड़ पर लालटेन' - डॉ. प्रवीण चंद्र बिष्ट	४८
<input type="checkbox"/> अपनेपन के कवि-मंगलेश डबराल और 'घर का रास्ता' - डॉ. अरुणा दुबलिश	६०
<input type="checkbox"/> मंगलेश डबराल की कविताओं से झाँकता है समाज श्यामसुंदर पाण्डेय	६८
<input type="checkbox"/> ग्लोबल समय का सच और 'नये युग का शत्रु' प्रा. दिनेश पाठक	७४
<input type="checkbox"/> मंगलेश डबराल की कविता की जमीन डॉ. उमेशचंद्र शुक्ल	८२
<input type="checkbox"/> 'कवि का अकेलापन': मंगलेश डबराल डॉ. शैलेश कुमार दुबे	८७
<input type="checkbox"/> कवि के कैनवास पर अमेरिका डॉ. मिथिलेश शर्मा	९२

अगला अंक



सूर्यबाला
की रचनाओं पर केंद्रित

संपादकीय

अपने तई

लगभग ३० वर्ष पहले समीचीन का प्रकाशन त्रैमासिक पत्रिका के रूप में आरंभ हुआ था। कुछ वर्षों बाद अर्थाभाव के कारण इसे कभी अर्धवार्षिक और कभी वार्षिक रूप भी दिया गया। इस कालखंड में इसका रजिस्ट्रेशन भी नहीं करवाया गया था किंतु कुछ मित्रों की प्रेरणा से और सहयोग से २००८ में अर्धवार्षिक पत्रिका के रूप में इसका पंजीकरण करा लिया गया। तब से 'समीचीन' नियमित रूप से प्रकाशित हो रही है। इस पत्रिका में मुख्य रूप से नए और प्रबुद्ध रचनाकारों के गंभीर लेख प्रकाशित करने का हमारा लक्ष्य रहा है। और हमें इस बात की आश्चस्ति है कि साहित्य में रुचि रखने वाले प्रबुद्ध पाठकों ने इसे सराहा है तथा समय-समय पर हमें इसको अधिक अर्थवान बनाने के लिए सुझाव और दिशा भी दी है।

कुछ समय से एक विचार हमें बार-बार कचोट रहा था। हम सोच रहे थे कि क्यों ना इस पत्रिका में मुख्यतः एकल रचनाकार की रचनाधर्मिता पर कुछ उपयोगी सामग्री दी जाए। अंततः इस विचार पर संपादक मंडल की सहमति बनी और हमने निश्चय किया कि आगे प्रत्येक अंक में किसी एक रचनाकार पर विस्तार से विचार किया जाए। फिर यह भी सोचा गया कि पुराने सिद्ध रचनाकारों पर छोटे बड़े समीक्षा और शोध ग्रंथों का प्रकाशन प्रभूत मात्रा में हो चुका है लेकिन बात के रचनाकारों का आकलन अभी कुछ ज्यादा नहीं हुआ है। यद्यपि बाद के कई रचनाकार पुराने रचनाकारों की तुलना में अपने यथार्थ से अधिक गहराई से जुड़े हुए हैं। इनकी प्रगतिशील और मानवतावादी रचनाएं अपनी समय और अपनी जमीन से जुड़ी हुई हैं। और इनमें शिद्द के साथ परिस्थितियों में बदलाव की बलवती आकांक्षा विद्यमान है।

हम मानते हैं कि नए युग का समर्थ रचनाकार अपने रचना धर्म में व्यक्ति-समाज में चल रही असंगतियों विडंबनाओं और गलित प्रवृत्तियों से भली भांति परिचित है। परिचित ही नहीं, वह इन पतनशील स्थितियों का स्वयं भी भोक्ता रहा है। इसीलिए उनके लेखन में वर्तमान व्यवस्था के प्रति चिंता भी है और आक्रोश भी जिसे वह बहुत शिद्द के साथ अपनी रचनाओं में व्यक्त कर रहा है। अब वह उस हवाई कल्पना से ऊपर उठकर जीवन के व्यक्तिगत, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक उबड़-खाबड़ में अपना कथ्य खोज कर उसे अत्यंत पैनपन के साथ शब्दबद्ध कर रहा है। हमारा विश्वास है कि आज के दिन ऐसे ही रचनाकार प्रासंगिक हैं जो एक ओर अपनी मिट्टी से जुड़े रहे हैं और दूसरी ओर जीवन की आपाधापी में संघर्ष करते हुए, अपनी रचनाधर्मिता में कुछ ऐसा विकल्प प्रदान कर रहे हैं, जिससे एक ओर संवेदनशील पाठक अपने समय की सर्वव्याप्त उच्छृंखलता से दो-चार हो सके और साथ ही दूसरी ओर उसके समाहार के लिए अपने चिंतन में

परिवर्तन ला सके।

वैसे हम मानते हैं कि साहित्य के माध्यम से क्रांति और परिवर्तन की संभावना नहीं बनती। साहित्य सामान्य पठित मध्यवर्गीय जनता में एक सीमा तक जागरूकता उत्पन्न कर सकता है। उसके सम्मुख समाज की विद्रूप विसंगतियाँ प्रस्तुत कर सकता है और उसके समाहार की चिन्ता जता सकता है। सामान्य रूप से अर्थवान साहित्य संवेदनशील पाठक को कुछ समय के लिए शांति प्रदान कर सकता है। सामान्यतः होता यह है, कि ऐसे पाठक को जब कोई रचना भा जाती है तो उसे पढ़कर वह एक प्रकार का सुकून महसूस करता है। हम नहीं समझते कि समाज के किसी भी आयाम के विद्रूप को लेकर लिखी गई रचना पाठक के मन में किसी प्रकार के विद्रोह की भावना उत्पन्न करके व्यावहारिक स्तर पर उसे उस विद्रूप या कलुष या विसंगति से दो चार होने को तैयार करती है। हां, इतना अवश्य है कि ऐसा पाठक कुछ समय के लिए ऐसी रचना को पढ़कर अपने को संतुष्ट हुआ अनुभव करता है। इससे आगे उसकी सोच नहीं बढ़ पाती। सच्चाई तो यही ही है। भले ही रचनाकार को यह गलतफहमी हो कि उसकी रचना संसार में क्रांति ला देगी। लेकिन ऐसा होता नहीं है।

लेकिन साथ ही, हम यह भी मानते हैं कि कोई भी रचनात्मक रचना जब व्यक्ति समाज के सुख-दुखों, हर्ष-विषाद के क्षणों, उसकी आशा-आकांक्षाओं तथा उसकी अच्छी-बुरी स्थितियों को प्रस्तुत करने के साथ-साथ समाज के राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं धार्मिक यथार्थ को प्रस्तुत करती है तो निश्चित ही उसका महत्व बढ़ जाता है। ऐसी रचना पाठक के लिए हाथ में पकड़े दर्पण के समान होती है।

हमें इस बात की प्रसन्नता है कि 'समीचीन' के इस नए अवतार में हम एक ऐसे ही रचनाकार पर सामग्री दे रहे हैं जिसने अपने मूल परिवेश और वर्ग को अभिव्यक्ति देने के साथ-साथ अपने समय के समाज में व्याप्त व्यापक असंगतियों और अमानुषिकता को देखा ही नहीं, स्वयं भी झेला है। हमारे इस अंक के उत्सव मूर्ति रचनाकार मंगलेश डबराल बहुमुखी प्रतिभा के धनी होने के साथ-साथ अत्यंत संवेदनशील और सहजता से अपनी बात कहने वाले यशस्वी रचनाकार हैं।

विषादी छाया और एक बारीक से व्यंग्य के साथ-साथ उनकी कविताओं में भविष्य के प्रति जो आस्था है वह उन्हें और अधिक विशिष्टता प्रदान करती है। जैसे, मैं दुःख हूँ / मुझ में एक धीमी कांपती हुई रोशनी है / इसमें से गुजरती है छायाएं और श्रद्धांजलियां / गुजरते हैं फूलों के डार / और संवेदना के वाक्य / जिनमें मुश्किल वक्तों का जिक्र होता है / और आने वाले दिनों के बारे में / एक उम्मीद जतलाई जाती है।

आशा है, हमारे प्रबुद्ध पाठक 'समीचीन' के इस नए स्वरूप से लाभान्वित होंगे। अंत में हम उन सभी रचनाकार बंधुओं के भी आभारी हैं, जिन्होंने इस अंक के लिए हमें सामग्री प्रदान की है।

अस्तु।□

- देवेश ठाकुर

E-mail : sameecheen@gmail.com

परिचय

मंगलेश डबराल का परिचय :

परिचय : मंगलेश डबराल का जन्म १६ मई १९४८, को टिहरी गढ़वाल जिले के काफलपानी नामक गाँव में हुआ था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा काफलपानी के प्राथमिक विद्यालय में हुई। उच्च शिक्षा के लिए उन्हें देहरादून आना पड़ा। इस दौरान इन्होंने कविताएँ लिखना भी शुरू कर दिया था। इनकी रुचि बचपन से ही हिन्दी, अंग्रेजी और संस्कृत के प्रति रही है। इसी का परिणाम है कि इन्होंने आठवीं कक्षा तक आते-आते 'कामायनी', 'प्रिय प्रवास' और 'ऑसू' जैसी महत्त्वपूर्ण पुस्तकों का अध्ययन कर लिया था।

उन्होंने बारह-तेरह वर्ष की अवस्था में जयशंकर प्रसाद की कहानी 'आकाशदीप' पर आधारित एक कहानी लिखी थी। इसके पश्चात इनकी कविताएँ लगातार 'शताब्दी' नामक पत्रिका में प्रकाशित होती रही। पिता की अस्वस्थता के चलते इन्हें बी. ए. तृतीय वर्ष की पढ़ाई छोड़कर दिल्ली जाना पड़ा। वहाँ इन्होंने 'हिन्दी पेट्रियट', 'प्रतिपक्ष', और 'आसपास' में कार्य करना प्रारंभ कर दिया। 'पेट्रियट' से ही इनकी पत्रकारिता प्रारंभ हुई। बाद में भोपाल के 'पूर्वग्रह' के सहायक संपादक रहे। इसके पश्चात लगातार अनेक पत्र-पत्रिकाओं में कार्य करते रहे। इनके पिता व ददा जी प्रसिद्ध वैद्य थे। ये दोनों ही ज्योतिष के भी प्रकांड विद्वान थे। इनके दादा जी ने गढ़वाली कहावतों का एक बड़ा संग्रह तैयार किया था और पिताजी गढ़वाली भाषा के कवि और हास्य नाटककार थे। इस प्रकार इनके पिता एक प्रसिद्ध वैद्य, कवि, गयक, अभिनेता, ज्योतिषी और नाटककार थे। मंगलेश जी के साहित्यकार को यही से उर्वर भूमि प्राप्त हुई थी। मंगलेश डबराल की माता का नाम सत्येश्वर देवी था। इन्हें जीवन पर्यंत एक ही दुख सताता रहा कि वे पढ़ नहीं पाई थी। प्राकृतिक सौन्दर्य व कल-कल करती स्वच्छ नदियों तथा सघन वनों से आच्छादित ऊँची-ऊँची पर्वत श्रृंखलाओं के बीच जन्मे मंगलेश जी का लगाव प्रकृति से होना स्वाभाविक था। ये आजीविका का निर्वहन पत्रकारिता से करते हैं। इनका साहित्यिक योगदान इस प्रकार रहा है -

चार कविता-संग्रह : पहाड़ पर लालटेन (१९८१), घर का रास्ता (१९८८), हम जो देखते हैं (१९९५) आवाज भी एक जगह है (२०००), नये युग का शत्रु (२०१३)।

यात्रा डायरी : एक बार आयोबा (१९९६)

गद्य संग्रह : लेखक की रोटी (१९८७), कवि का अकेलापन (२००८) साक्षात्कारों का संकलन प्रकाशित।

अनुवाद : बर्टोल्ट ब्रेष्ट, हांस मायूस, एंत्सेंसवर्गर, यानिस रित्सोस, ज़िब्रियेव, तदेऊष, रूज़ेविच (पोल्स्की), पाब्लो नेरुदा, एर्नेस्तो कार्देनल (स्पानी), डोरा गाबे, स्तांका पेंचेवा (बल्गारी) की कविताओं के अनुवाद।

ये बांग्ला कवि नाबारुण भट्टाचार्य के संग्रह 'यह मृत्यु उपत्यका नहीं है मेरा देश' के सह-अनुवादक भी रहे हैं।

इन्होंने नागार्जुन, निर्मल वर्मा, महाश्वेता देवी, उ. र. अनंतमूर्ति, गुरदयाल सिंह, कुर्रतुल-ऐन हैदर जैसे साहित्यकारों पर वृत्तचित्रों के लिए पटकथा लेखन।

ये समाज, संगीत, सिनेमा, और कला पर समीक्षात्मक लेखन भी करते रहे हैं।

प्रायः सभी भारतीय भाषाओं के अलावा अंग्रेजी, रूसी, जर्मन, डच, फ्रांसीसी, स्पानी, इतालवी, पुर्तगाली, बल्गारी, पोल्स्की आदि विदेशी भाषाओं के कई संकलनों और पत्र-पत्रिकाओं में मंगलेश डबराल की कविताओं के अनुवाद प्रकाशित हैं।

मारिओला ओफ्रेदी के द्वारा उनके कविता संग्रह 'आवाज भी एक जगह है' का इतालवी अनुवाद 'अंके ला वोचे ऐ उन लुओगो' नाम से प्रकाशित हुआ और अंग्रेजी अनुवादों का एक संचयन 'दिस नंबर दज़ नॉट एग्ज़िस्ट' भी शीघ्र प्रकाश्य।

सम्मान : ओम् प्रकश स्मृति सम्मान, शमशेर सम्मान, पहल सम्मान, साहित्य अकादमी पुरस्कार, हिन्दी अकादमी दिल्ली का साहित्यकार सम्मान, कुमार विकल स्मृति सम्मान और गजानन माधव मुक्तिबोध सम्मान प्राप्त हुए हैं।

कविता पाठ : आयोबा विश्वविद्यालय के अंतर्राष्ट्रीय लेखन कार्यक्रम, जर्मनी के लाइपज़िग पुस्तक मेला, रीतरदम के अंतर्राष्ट्रीय कविता उत्सव में और नेपाल मॉरिशस और मॉस्को की यात्राओं के दौरान काव्यपाठ।

वर्तमान आवास
: ई २०४, जनसत्ता अपार्टमेंट्स,
सेक्टर ९, वसुंधरा, दिल्ली.

आकलन

● डॉ. सतीश पांडेय

विरोधाभासी समय में व्यवस्था-विरोध आस्था की कविताएँ

वर्तमान जटिल यथार्थ को गहन संवेदना और कहन की विलक्षणता के साथ जिन समकालीन कवियों ने संजीदगी से व्यक्त किया है, उनमें मंगलेश डबराल अग्रणी हैं। उनकी कविताओं में जहाँ अपनी जड़ से उखड़कर विस्थापित होने की पीड़ा और अतीत की स्मृतियाँ हैं, वहीं निरंतर अमानवीय होते जा रहे परिवेश के अंधेरे में पहाड़ पर जलती लालटेन भी है, जो संघर्ष की प्रेरणा और उजाले की उम्मीद भी है। पहले काव्य-संग्रह 'पहाड़ पर लालटेन' से शुरू हुई इनकी काव्य-यात्रा 'घर का रास्ता', 'हम जो देखते हैं', 'आवाज भी एक जगह है' तथा 'नये युग में शत्रु' तक संवेदना के धरातल पर निरंतर वैविध्यपूर्ण एवं सघन होती गयी है। इनमें गाँव, अंचल, वहाँ के लोगों के अभाव, निराशा, संघर्ष और स्वप्न तो स्मृतियों के माध्यम से व्यक्त हुआ ही है, शहर के जीवन की विडंबनाओं और व्यवस्था की क्रूरताओं के बीच हाशिए पर धकेल दिए गए लोगों का संघर्ष एवं उनकी जिजीविषा थी सहज ढंग से उजागर हुई है। इस क्रूर व्यवस्था में जो चीजें नष्ट हो गयी हैं या निरंतर क्षरित होती जा रही हैं, उन्हें भी इनकी कविताएँ देख लेती हैं और उनसे हमारी पहचान कराती हैं।

आज के विरोधाभासी समय में पूँजी के बढ़ते प्रभाव, आभासी संसार के मायाजाल, सांप्रदायिकता, बाजार की ताकतों का उभार, राजनीतिक सत्ता और अपराध-जगत की मिलीभगत आदि ने सारे मानवीय एवं लोकतांत्रिक मूल्यों एवं मानदंडों को जिस तरह बदल दिया है, उससे जीवन-स्थितियों की सही पहचान करना कठिन हो गया है। इन अमानवीय स्थितियों की पड़ताल करती इनकी कविताएँ मानवीय मूल्यों की रक्षा के लिए जरूरी हस्तक्षेप करती नजर आती हैं। दिलचस्प यह है कि इनका सारा प्रतिरोध किसी हाहाकार के रूप नहीं बल्कि बहुत ही सहज रूप में व्यक्त हुआ है। इस बारे में कवि विशेष रूप से सजग है। इसीलिए वह स्वयं ही कहता है-जो कुछ भी था जहाँ-तहाँ हर तरफ/शोर की तरह लिखा हुआ/ उसे ही लिखता मैं/ संगीत की तरह^१ इस तरह अमानवीय व क्रूर व्यवस्था का विरोध उनकी रचनाओं में आरंभ से ही दिखायी देता है किंतु 'अंडरटोन' में।

वस्तुतः मंगलेश डबराल के लिए कविता करना एक जवाबदेही भरा कार्य है। इसीलिए वे 'कवि का अकेलापन' में गुजरात के कस्बे अतुल की एक शिक्षिका लता शर्मा के घर काम करनेवाली आदिवासी लड़की टीना नाइका को आत्महत्या करने से बचाने और उसकी जिंदगी की काल कोठरी में एक खिड़की खोलने में कविता की अहम भूमिका का उल्लेख करते हैं। उन्हें अपने समय का यथार्थ बार-बार उद्बलित करता है। गुजरात के भूकंप में हुए विनाश एवं हृदय-विदारक घटनाओं का कारण वे सिर्फ प्रकृति के कोप को ही नहीं बल्कि उस माफिया तंत्र को भी मानते हैं, जो आज हमारी राजनीति और समाज पर ही नहीं बल्कि मानव-संबंधों पर भी कब्जा जमा चुका है, उन्हें भ्रष्ट और क्रूर बना चुका है। यह क्रूरता कभी अमीर और गरीब राहत के रूप में दिखायी देती है तो कभी हिंदू राहत, मुसलमान राहत, दलित राहत या भूख से पीड़ित भीड़ को रोटी देने से पहले एक खास तरह का धार्मिक जयकार करने के रूप में।

समाज को बाँटने का यही एक आधार नहीं है। बाबरी मस्जिद को ढहाए जाने की घटना के बारे में भी इनका मानना यही है कि अनेकता बहुलता और विविधता को अपनी विशेषता माननेवाले हमारे समाज में अंग्रेज शासकों द्वारा किए हुए विभाजन की तर्ज पर एक और मानसिक विभाजन किया गया जिसने हमारे सामाजिक संबंधों, व्यवहारों और हमारी भाषा तक में असहिष्णुता, घृणा, क्रूरता हिंसा और उन्माद के रास्ते खोल दिए तथा विचार और साहित्य के क्षेत्र में एक गहरा अपराध-बोध पैदा कर दिया। ऐसे परिवेश में अपने आप से ही सवाल करते हुए मंगलेश डबराल लिखते हैं कि 'इन हादसों के प्रति क्या मेरी कविता की कोई जवाबदेही है? क्या मेरे आसपास एक निर्मम मनुष्य बनता चला गया, एक आततायी व्यवस्था खड़ी होती गयी और मैं इस सबसे बेखबर कविता लिखता गया?'

अपने आपसे यह सवाल करना ही अपने कविता-कर्म को जवाबदेही से जोड़ना है। इनके पहले कविता संग्रह 'पहाड़ पर लालटेन' की कविताओं से ही इनमें यह जवाबदेही दिखायी देती है। इसीलिए कवि स्वयं को ही नहीं, अपनी कविता को भी कठघरे में खड़ा करता है-

मेज़ पर गंभीरता से झुके हुए/हम किसके प्रतिनिधि हैं/

किस घटना की खबर हैं हम/ कौन हैं वे लोग हम जिनकी आवाज़ हैं/

भूख से भर्रायी हुई/ हम उन्हें जान पाते, कोई हथियार/ दे सकते उनके हाथों में/

हम उनसे पूछ सकते क्या वे अपने साथ/लाये हैं अपनी आग/कविता से पूछे जाने थे।

सारे सवालियों के जवाब/पूरी सदी, पूरे खून का हिसाबा³

इसीलिए डॉ. विजय कुमार का मानना है कि 'पहाड़ पर लालटेन' की कविताओं से हिंदी कविता में संभवतः पहली बार आजादी के बाद के भारत की विसंगतियों और अंतर्विरोधों से भरी विकास प्रक्रिया का एक अछूता और भयावह पहलू सामने आया था। केंद्रीकृत अर्थव्यवस्था और भारी उद्योगों पर आधारित विकास का मिथ किस प्रकार सुदूर क्षेत्रों में परंपरागत सामाजिक ढाँचे, उसके आर्थिक आधार, वहाँ की आत्मनिर्भर जीवन पद्धति और उससे उपजे जीवन मूल्यों को

तहस-नहस कर रहा है, इसका एक मार्मिक साक्ष्य इन कविताओं में है।^४

विकास की इसी प्रक्रिया के तहत पहाड़ का आदमी शहर की ओर आकर्षित होता है। पहले तो उसे वहाँ की जीवन-शैली को देखकर आश्चर्य होता है किंतु वह उस आकर्षण से उबर नहीं पाता-

मैंने शहर को देखा और मैं मुस्कराया / वहाँ कोई कैसे रह सकता है /

यह जानने में गया / और वापस न आया।^५

शहर में रहते हुए हर रात एक अंतिम रात महसूस होती है। लोग सारी विडंबनाओं को सहते हुए एक दूसरे की पीड़ा अनुभव करते हुए शहर के अनुसार मनमानी शकल में ढलते रहते हैं। अपने नकली अंधेरे में शहर खतरे की आवाज में बदलता है, भीड़ में लाठियों की तरह शहर उन पर टूटता है और लोगों में बदलता है, भीड़ में लाठियों की तरह शहर उन पर टूटता है और लोगों में फूँद की तरह फैल जाता है। ऐसे में अपनी जड़ से उखड़ने का यह अहसास असुरक्षा और टूटन का अनुभव भी कराता है। 'चुपचाप' कविता में इस विस्थापन और टूटन को व्यक्त करते हुए कवि लिखता है-

तमाम संबंधों को विदा कर देने के बाद / मैं यहाँ उगा हूँ / जहाँ सारी ऋतुएँ समाप्त हो गयी हैं /

धूप और समुद्र समाप्त हो गये हैं / थोड़ी देर के लिए मैं उगा हूँ यहाँ /

जहाँ उजाला जाले की तरह चिपटता है /

और समस्याएँ मेरी भूख के आगे / डाल देती हैं मेरा ही शरीर।^६

कवि भूख को स्वप्न से, इच्छा को ऊब से और उम्मीद को शहर से जोड़ते हुए यथार्थ का ऐसा वितान प्रस्तुत करता है जहाँ कुछ भी बचाया नहीं जा पाता। रात में जो सपने देखते हैं, वे भी सुबह छूट जाते हैं। एक सड़क हमें उस जगह तक जरूर ले जाती है जहाँ नौकरी हमें धमकाती हुई काम कराती है, लेकिन कवि जब इस दुनिया के बारे में सोचता है तो उसे लगता है कि यहाँ की दुनिया चारों ओर से बंद और डरी हुई है।^७ कवि-मन में उस घर की स्मृति बसती है जहाँ चीथड़ों और स्वप्नों का अंधकार है। खाने-कमाने की खोज में तितर-बितर होते हुए बच्चे छोड़ जाते हैं दिन भर लकड़ी ढोकर चूल्हा जलाने वाली माँ और डाकखाने में चिट्ठी का इंतज़ार करके हाथ-पाँव में दर्द की शिकायत करते पिता को। यह परिस्थितियों और विडंबनाओं का वह अंधकार है जिसमें कुछ भी दिखायी नहीं देता। 'पानी की रात' कविता में इस अंधकार से उबरने की छटपटाहट व्यक्त करते हुए कवि कहता है-

हमें दिखलाओ वे जगहें हम जिन्हें छोड़ आये हैं

हमें वे शब्द दो जिनके बीच कभी तो होगा

हमारा सूर्योदय।^८

व्यवस्था की क्रूरता ही है कि लोकतंत्र में सम्राज्ञी जैसा व्यवहार किया जाता है और भीड़ पर हल्ले के बाद सिर्फ लाल पगड़ियाँ तैरने लगती हैं। सम्राज्ञी के अंगरक्षक मूर्ख मुद्राओं में टुमकते हैं और कुत्ते से अधिक खतरनाक एक आदमी कुत्ते से सावधान कराकर चौंका देता है। विडंबना यह

है कि अत्याचारी अत्याचार करने के बाद बच्चों को गोद में उठा लेते हैं और उन्हें अपने जीतने की कथा सुनाते हैं। अत्याचार की यह कथा सुनाना अत्याचार से उत्पन्न दहशत को अगली पीढ़ी तक हस्तांतरित करना है। इसी तरह 'तानाशाह कहता है' कविता में सत्ता हथियाने के बाद उपजी क्रूरता का भयावह रूप दिखायी देता है। तानाशाह खुली चुनौती देता है कि वह नहीं होगा तो सामान्यजन भी नहीं होगा। वह जानता है कि जिसकी झोपड़ियों के छप्पर उड़ गए हैं, कई रोज से जिसने कुछ नहीं खाया है; उसकी फसल कोई लूट ले गया है। उसके बच्चे भूख से रो रहे होते हैं फिर भी वह क्रूरतापूर्ण ढंग से कहता है-

फिर भी तुम खुश रह सकते हो/ अगर हमारे होकर रहो/
हम तुम्हारे लिए ही आए हैं/ कहता हुआ तानाशाह नेपथ्य से आता है/
जो हमारा नहीं उसकी खैर नहीं/ कहकर मुस्कराता है^९

दूसरे संग्रह 'घर का रास्ता' में भी कवि ने सामाजिक यथार्थ को प्रस्तुत करते हुए जहाँ आम आदमी का यथार्थ प्रस्तुत किया है, वहीं शोषक व्यवस्था का स्वरूप प्रस्तुत करते हुए उनके प्रति विरोध और संघर्ष की भावना भी उजागर की है। 'पत्थरों की कहानी' प्रकारांतर से सामान्य जन की ही कहानी है। कवि को लगता है कि पत्थरों के इस लोक के बारे में वह बहुत कम जानता है। ये लोग कभी शोक में डूबे होते हैं तो कभी उनमें से भी चिनगारियाँ पैदा होती हैं-

कभी वे सिर्फ शोक में डूबे लगते हैं/ कभी एक दूसरे से फुसफुसाते हुए/
कभी-कभी उनसे पैदा हुई चिनगारियाँ/ आसपास कोई जंगल खोजती हुई^{१०}

इनका जीवन एक 'शोकगीत' की तरह है जिसमें कोई स्वर नहीं, कोई लय नहीं। सिर्फ रात है जिन्हें अज्ञात लिपि की तरह पढ़ा जा सकता है। इस समकालीन यथार्थ को 'खिलौने' कविता में खिलौना बेचनेवाले की जुबानी प्रकट करते हुए कवि कहता है-

मुझे शर्म आती है इन्हें ढोते हुए/ फर्क नहीं रहा भेड़िये और हिरन की आँखों में
बंदर दिखता है खूँखार/ रबर का बना खरगोश/ दन से दाग देता है पिस्तौल^{११}

इन स्थितियों के लिए कवि ने हत्यारी और भ्रष्ट शोषक व्यवस्था को जिम्मेदार माना है। 'सफेद दीवार' कविता में कवि पूरी शताब्दी के इस भयावह यथार्थ को ही नहीं दर्ज करना चाहता है बल्कि कल सुबह के लिए कोई संदेश या अगली लड़ाई का ऐलान भी लिखना चाहता है-

यहाँ भूखे बच्चों की तस्वीर लगायी जा सकती है/ गोलियों के निशान बनाए जा सकते हैं/
और उनके चारों ओर उड़ती हुई बारूद/ यहाँ खोदी जा सकती है/
हत्यारों की आँखें/ उनके खून से भरे हुए हाथ^{१२}

कवि यहाँ जिन हत्यारों के खून से भरे हाथों की बात कर रहा है, उनकी शिनाख्त करना सहज नहीं है। वह हत्यारा आदमी का वेष धारण करके सामने आता है। इसीलिए कवि को आश्चर्य होता है कि-

हमने नहीं सोचा था अत्याचारी भी कहेगा/मेरा चेहरा मिलता है आदमी से!^{३३}
वह जो कुछ भी कर रहा होता है, जानबूझ कर करता है। उसकी क्रूरता उद्घाटित करते हुए कवि इसी ओर संकेत करता है-

गिरते हुए उसकी एक झलक/देखी मैंने/

जो हँसते हुए मुझे गिरा रहा था/लगातार/^{३४}

क्रूर व्यवस्था के इसी दोहरे चरित्र को 'हत्यारा' कविता में भी देखा जा सकता है-

सेनाएँ कट मरेंगी हत्यारा जीतेगा/ हर बार जीतने के बाद/लाशों के बीच अकेला खड़ा/

हत्यारा कहेगा/ अब मैं जाता हूँ बुद्ध की शरण।^{३५}

यह तथ्य और भी दिलचस्प लगता है कि अत्याचारी के निर्दोष होने के कई प्रमाण दिखायी देते हैं। उसके नाखून या दाँत लंबे नहीं होते और न ही आँखें लाल होती हैं। इसके विपरीत वह मुस्कराता रहता है। इतना ही नहीं-

अक्सर अपने घर आमंत्रित करता है/ और हमारी ओर अपना कोमल हाथ बढ़ाता है/

उसे घोर आश्चर्य है कि लोग उससे डरते हैं/ ... अत्याचारी इन दिनों खूब लोकप्रिय है/

कई मरे हुए लोग भी उसके घर आते-जाते हैं।^{३६}

ऐसे हत्यारे समय में भी कवि संघर्ष की लौ जलाये रखना चाहता है। वह न सिर्फ संघर्ष की आग जलाये रखने की प्रतिबद्धता प्रकट करता है बल्कि हर कीमत पर आदमी की हँसी खोजना चाहता है-

चाहे जैसी भी हवा हो/यहीं हमें जलानी है अपनी आग/

जैसा भी वक्त हो/ इसी में खोजनी है अपनी हँसी।^{३७}

'दिनचर्या' कविता भी कवि की इसी संवेदना को प्रकट करती है। वह इस सारे अपराध और पागलपन के बीच नमक के बराबर ही सही जीवन को बचाना चाहता है, करुणा और उदारता जैसे मूल्यों को बचाना चाहता है-

सोचते हुए हम देखते हैं/समाज जा रहा है तेज़ी से रसातल/

बचा ले आये हैं हम रोटी में नमक बराबर जीवन/ सलामत हैं हमारे सर चक्कर खाते हुए/

आत्मा के दरवाजे से गुजरते हुए हम सोचते हैं/करुणा राहत उदारता के बारे में।^{३८}

'हम जो देखते हैं, संग्रह की कविताएँ वर्तमान विरोधाभासी समय में अंतर्विरोधी स्थितियों को उजागर करती हैं। इस क्रूर व्यवस्था में बहुत-सी चीजें या तो खो गयी हैं या लगातार क्षरित होती जा रही हैं। हम जो देखते हैं, चीजें वैसी ही नहीं होती। 'घर शांत है।' किताबें चुप हैं। किसी के रोने की आवाज नहीं है। किसी के धमकाने या डरने की आवाज नहीं है। न कोई प्रार्थना कर रहा है, न कोई भीख माँग रहा है। इन क्रियाओं के न होने की सूचना जैसे यह प्रतीति कराती है कि दुनिया में ये सारी

घटनाएँ होती हैं। इसी रूप में जो दिखायी दे रहा है, उसके अलावा 'जो होता रहा है' की ओर इन्होंने सूक्ष्म संकेत दिए हैं।

'कुछ देर के लिए' कविता में भी कवि परस्पर विरोधी क्रियाओं द्वारा इस भयानक दुनिया का एहसास कराता है। कुछ देर वह अन्याय का विरोध करता है। फिर सोचता है कि जिन शब्दों में उसकी आत्मा नहीं है, जो आततायियों के हैं और जिनसे खून जैसा टपकता है, उन शब्दों को नहीं लिखेगा। आगे फिर वह सोचता है जो निर्भय होकर क्रूरता किए जा रहे हैं, उनके विरुद्ध उसमें घृणा बची हुई है। अंततः उसे लगता है-

सुबह मैं जागा तो यह/ एक जानी-पहचानी भयानक दुनिया में
फिर से जन्म लेना था।^{१९}

'अभियान' कविता भी इसी ओर संकेत करती है कि स्थितियाँ जैसी हैं, वैसी दिखायी नहीं देतीं। बाज़ार की शक्तियों के प्रभाव में सब कुछ बदल गया है-

हत्यारा एक मासूम के कपड़े पहनकर चला आया है/वह जिसे अपने पर गर्व था/
एक खुशामदी की आवाज़ में गिड़गिड़ा रहा है/ ट्रेजडी है संक्षिप्त लंबा प्रहसन/
हरेक चाहता है किस तरह झपट लूँ/ सर्वश्रेष्ठ अभिनेता का पुरस्कार।^{२०}

इस तरह यह ऐसा समय है, जहाँ अपने से बड़ा अपना अंधकार दिखायी देता है। यह ऐसा समय है जब कोई भी अंधा, लँगड़ा, बहरा, बेघर और पागल हो सकता है। 'अपनी तस्वीर' भी समसामयिक यथार्थ की ऐसी ही तस्वीर है जिसमें चेहरे की शांति बेचैनी का एक मुखौटा है। करुणा और क्रूरता परस्पर घुले-मिले हैं। थोड़ा-सा गर्व गहरी शर्म में डूबा है। लड़ने की उम्र बिना लड़े ही बीत रही है। इसके विपरीत इसमें किसी युद्ध से लौटने की यातना है और ये वे आँखें हैं, जो बताती हैं कि प्रेम जिस पर सारी चीजें टिकी हैं कितना कम होता जा रहा है। इसके बावजूद कवि बेहतर तस्वीर की उम्मीद रखता है-

आत्ममुग्धता और मसखरी के बीच/ कई तस्वीरों की एक तस्वीर/
जिसे मैं बार-बार खिंचवाता हूँ/एक बेहतर तस्वीर खिंचने की/
निरर्थक-सी उम्मीद में।^{२१}

ऐसे कठिन समय में कवि उन सभी कोमल संवेदनाओं को बचाना चाहता है जिनसे मनुष्यता की रक्षा की उम्मीद बँधती है। वह ऐसे स्पर्श को बचाए रखना चाहता है जो किसी आततायी की तरह कंधे नहीं छीलता। वह उस स्वाद को बचाना चाहता है जो मिठास या कड़वाहट से दूर चीजों को खाता नहीं है बल्कि उन्हें बचाये रखने की कोशिश का नाम है। वह इन्सानियत का भाव व्यक्त करने वाले सरल वाक्य को बचाना चाहता है-

एक सरल वाक्य बचाना मेरा उद्देश्य है/मसलन यह कि हम इंसान हैं/
मैं चाहता हूँ इस वाक्य की सचाई बची रहे।^{२२}

‘आवाज भी एक जगह है’ की तमाम कविताएँ मुख्यधारा से अलग हाशिए के लोगों की प्रतिष्ठा करती हैं। चाहे ‘संगतकार’ हो या ‘स्त्रियाँ’ या ‘पागलों का एक वर्णन’, हर जगह कवि उपेक्षितों की पीड़ा प्रकट करते हुए मनुष्यता को तरजीह देता है। मुख्य गायक के भारी स्वर का साथ देता संगतकार मुख्य गायक की गरज में अपनी गूँज मिलाता आया है। गायक जब सरगम को लाँघकर भटक जाता है, तब संगतकार ही उसे सँभालता है। कभी-कभी वह इसलिए साथ देता है, जिससे गायक को बताया जा सके कि वह अकेला नहीं है-

और उसकी आवाज में जो एक हिचक साफ सुनाई देती है/
या अपने स्वर को ऊँचा न उठाने की जो कोशिश है उसे विफलता नहीं/
उसकी मनुष्यता समझा जाना चाहिए!^{२३}

वर्तमान विरोधाभासी समय का यथार्थ इस संग्रह में भी ‘खुशी कैसा दुर्भाग्य’ कविता में प्रकट हुआ है। कवि वर्तमान व्यवस्था का सच उजागर करते हुए कहता है कि जिसने समाज में कुछ रचा नहीं, समाज का वही नियंता बन बैठा है। वह समाज को और तोड़ने की स्पष्ट घोषणा करता है। उसके पास खूँखार हँसी है। ऐसे समय के अंतर्विरोधों को स्पष्ट करते हुए कवि लिखता है-

जो नष्ट कर सकता है उसी का है सम्मान/ झूठ फिलहाल जाना जाता है सच की तरह/
प्रेम की जगह सिंहासन पर विराजती घृणा/बुराई गले मिलती अच्छाई से/
मूर्खता तुम संतुष्ट हो तुम्हारे चेहरे पर उत्साह है/
धूर्तता तुम मजे में हो अपने विशाल परिवार के साथ/
... खुशी कैसा दुर्भाग्य तुम रहती हो इन सबके साथ!^{२४}

इसी क्रम में ‘दूसरे लोग’ कविता भी विचारणीय इसलिए है कि वर्तमान व्यवस्था के नुमाइन्दे अपनी पुरानी सभ्यता का गुणगान करते हुए सबको उसी सभ्यता की ओर पीछे ले जाना चाहते हैं। जो लोग उनके विरोधी हैं, उनके घरों में आग लगाने से भी नहीं हिचकते। अपनी सभ्यता की महानता के नाम पर दूसरों का घर जलाने वाली इन सांप्रदायिक ताकतों को चुनौती देता हुआ कवि लिखता है-

सभ्यता का गुणगान करने वालो/तुम अगर सभ्य नहीं हो/
तो तुम्हारी सभ्यता का कद तुमसे बड़ा नहीं है/एक लंबी शर्म से ज्यादा कुछ नहीं है इतिहास!^{२५}
सत्ता के केंद्र में स्थापित उच्चवर्ग की क्रूरता एवं संवेदनहीनता ‘लड़की और अंधा आदमी’ में बड़ी शिद्दत के साथ व्यक्त हुई है। यह वह वर्ग है जो अंधे को भी न तो रास्ता देगा और न ही यह बताएगा कि आगे एक गड्ढा, दीवार या एक फाटक है जिस पर लोहे की नोकें लगी हैं। इनकी करुणा और प्रेम की असलियत बताते हुए कवि ने लिखा है-

तुम देख नहीं पाते उनकी करुणा/भीख में दिया गया एक सिक्का है और प्रेम है महज स्वार्थ/
वे तुम्हें नहीं सुनेंगे/ सिर्फ मेरी युवास्था पर एक ललचायी निगाह डालेंगे/

तब उनकी आँखों में दिखेगी एक क्षणिक चमका^{२६}

उच्चवर्ग एवं पूँजीवादी-सामंतवादी व्यवस्था का गहरा संबंध रहा है। 'त्रिमलिन कथा' तानाशाही-सामंतवादी, साम्यवादी एवं बाजारवादी समय में कलाकारों की स्थितियों का यथार्थ बयान करती है। मास्को के इस किले में बारोक और रोमन कला के शिखर और गिरिजाघरों के गुंबद बनानेवाले कारीगरों के हाथ जार के आदेश पर काट दिए गए थे ताकि कहीं और अवतरित न हो सके ऐसी कला। ताजमहल के बारे में भी यही कहा जाता है लेकिन २०वीं सदी में लेनिन ने इन कारीगरों के हाथ लौटाए थे। अब इस पूँजीवादी-भौतिकवादी व्यवस्था में वे हाथ फिर से छीन लिए गए हैं-

वे फिर से छीन लिए गए/अब वे महँगी कारें चलाते हैं/

राहगीरों को लूटते हैं /जुआघरों में किस्मत आजमाते हैं।^{२७}

इस भौतिकवादी व्यवस्था को बाजार की ताकतें संचालित कर रही हैं। 'बाजार' कविता में कवि मानता है कि इसका अपना चरित्र होता है। यहाँ जो कुछ आमतौर पर जिस तरह दिखता है, वह उस तरह नहीं होता। यह बाजार का एक ठोस आध्यात्मिक आधार होता है। इसी लिए चमत्कारों का उत्पादन सबसे बड़ा व्यापार है। मसलन शांति पाने के लिए आरामदेह सोफा या सुख की नींद के लिए विशेष ब्रांड का बिस्तर। यहाँ की असलियत उजागर करते हुए कवि लिखता है-

और यह जो आपाधापी और कलह जैसी देखते हैं/ वह मनुष्यों की दुनिया की ही तरह है/

चीजें आपस में लगातार एक मैत्रीपूर्ण युद्ध में उलझी होती हैं/

प्रकृति की तरह बाजार भी परिवर्तनशील है/

उसका भूगर्भ भी कभी इधर कभी उधर करवटें बदलता है/

भूकंप के झटके रोज ही यहाँ आते हैं/लेकिन उन्हें महसूस नहीं किया जाता।^{२८}

इस पूँजीवादी माहौल में जो कल तक हमारे शत्रु थे, वे ही आज सबसे बड़े हितैषी जैसे लग रहे हैं। मंगलेश डबराल ने अपने काव्य-संग्रह 'नये युग में शत्रु' में ऐसी ही स्थितियों की पड़ताल की है। कवि इस नए युग के असली शत्रु की पहचान ही नहीं करता बल्कि उसके कारण मानव जीवन में उत्पन्न हो रहे उहापोह, संवेदनहीनता और मूल्यों के क्षरण को भी रेखांकित करता है। उसकी पूरी कोशिश इन अमानवीय स्थितियों और उनके कारक तत्वों के विरुद्ध संघर्ष करने की है। अतः ये कविताएँ अपनी ऐतिहासिक जिम्मेदारी से वाकिफ होते हुए रचनाकार की प्रतिबद्धता की पहचान कराती हैं।

कवि वैश्वीकरण और बाजारवादी संस्कृति के युग में जिस शत्रु की आहट अनुभव करता है, वह अपने जूतों, कपड़ों और मोबाइलों के साथ इस सदी और सहस्राब्दी की तरह अथाह और अज्ञात तहखाने में रहता है। उसकी सही पहचान कर पाना कठिन है क्योंकि वह एक जगह नहीं रहता। उसे जहाँ भी खोजने का प्रयास करते हैं, वहाँ जाने पर पता चलता है कि वह किसी और जगह रह रहा है -

हमारा शत्रु कभी हमसे नहीं मिलता सामने नहीं आता /हमें ललकारता नहीं
हालाँकि उसके आने-जाने की आहट हमेशा बनी हुई रहती है
कभी-कभी उसका संदेश आता है कि अब कहीं शत्रु नहीं है
हम सब एक दूसरे के मित्र हैं
आपसी मतभेद भुलाकर आइये हम एक ही प्याले से पियें
वसुधैव कुटुंबकम् हमारा विश्वास है।^{२९}

कवि इस समय की पहचान इस रूप में करता है कि जो जितना ही ताकतवर है, उसके भीतर उसी के आकार का एक हिटलर बैठा हुआ है। ऐसे कठिन समय में पूंजी-तंत्र के बीच टिके रहने का संघर्ष भी उतना ही कठिन है। जो लोग संघर्ष नहीं कर सकते, उनके लिए हँसते रहना जीवन गुजारने की सबसे बड़ी कला होती है क्योंकि हँसकर वे अपने भीतर का दुख छिपा लेने की कोशिश करते हैं।

साम्राज्यवादी ताकतें पहले की तरह अब जमीन पर कब्जा करने के बदले दिमाग पर पहले कब्जा करती हैं। यह क्रम शुरू होता है तरह-तरह की सस्ती-महँगी चमकदार खाने-पीने की चीजों से और हम उनके इस षड्यंत्र से अनजान बने सिर्फ स्वाद की बात करते हैं। यह विरोधाभासी समय की ही देन है कि ये नए मानसिक गुलाम बड़े ही मजे में दिखायी देते हैं। अपने किसी दुख के बारे में बताना उन्हें कठिन लगता है-

और वे संघर्ष जिनके बारे में सोचा गया था कि खत्म हो चुके हैं
फिर से वहीं चले आते हैं जहाँ से शुरू हुए थे
वह सब जिसे बेहतर हो चुका मान लिया गया था
पहले से खराब दिखता है
और यह भी तय है कि इस बार लड़ना ज्यादा कठिन है
क्योंकि ज्यादातर लोग अपने को जीता हुआ मानते हैं और हँसते हैं
हर बार कुछ छिपाते हुए लगते हैं।^{३०}

वैश्वीकरण ने प्रबंधन का महत्व बढ़ा दिया है। कुशल प्रबंधन के तहत जैसे सारी दुनिया होटलों, दूकानों और अस्पतालों में तब्दील हो रही है। चाहे मल्टीप्लेक्स और मेगामाल हों या अबू गरेब के यातना कक्ष, अमीरी हो या गरीबी, स्वर्गिक सुखों वाली बस्तियाँ हों या झोपड़े सब एक ही जैसी खूबी से प्रबंधित किए जा रहे हैं। यहाँ तक कि जब सोच-समझकर शहरों पर बम गिराये जाते हैं तब युद्ध भी प्रबंधन का विषय होता है।

अन्याय का पता न चलने देना अन्याय का कुशल प्रबंधन है
लूट का न दिखना लूट की कला है
दुनिया में कुछ भी अच्छा या बुरा नहीं है
बल्कि सब कुछ अत्यंत प्रबंधनीय है।^{३१}

मंगलेश डबराल ने यह माना है कि कविता अपने समय के संकटों को पूरी सच्चाई से कभी व्यक्त नहीं कर पाती। इसलिए उसमें हमेशा ही संकट बना रहता है। लेकिन यह उसके लिए दोहरे संकट का, दोहरे आपातकाल का समय है जब बाहर से महाबली बहुराष्ट्रीय निगम और उनका जगमगाता बाजार और भीतर से सांस्कृतिक फ्रासीवाद की शक्तियाँ समाज को अपने-अपने तरीकों से विकृत कर रही हैं। इस बाजारवाद और कट्टरवाद में से एक ने लालच और सफलता की हमारी निकृष्ट इच्छाओं को सार्वजनिक कर दिया है और दूसरे ने हमारे सबसे आंतरिक नैतिक मूल्यों को, हमारे मनुष्य होने को, हमारे आत्मिक जीवन को दूषित करते हुए हमें एक हीन मनुष्य में तब्दील कर दिया है। इस खराब किये जा रहे मनुष्य में धैर्य और सहिष्णुता बहुत कम है और उसके भीतर उग्रता और आक्रामकता, दूसरे को पीछे ठेलकर जल्दी से कुछ झपट लेने, लूट लेने और कामयाब होकर खिलखिलाने की बेचैनी बढ़ती जा रही है।^{३२}

सांप्रदायिक ताकतों के इस प्रभाव को इन्होंने अनेक कविताओं में व्यक्त किया है। 'गुजरात के मृतक का बयान' और 'अंजार' ऐसी ही कविताएँ हैं। 'गुजरात के मृतक का बयान' में एक गरीब कलाकार की पीड़ा व्यक्त हुई है जो जीवन की बुनियादी जरूरतें पूरी करने के लिए बचपन से ही जीता-मरता रहता था। जीवन के लिए अंतहीन खोज ही उसका जीवन था। वह कपड़े रँगता था, लकड़ी के हिंडोले और गरबा के रंगीन डांडिये बनाता था, अल्युमीनियम के तारों से बच्चों के लिए छोटी-मोटी साइकिलें बनाता था। इस तरह वह एक रंगरेज, एक मिस्त्री, एक कारीगर, कलाकार था। पत्नी-बच्चों के साथ उसका मारा जाना किसी हिंदू या मुसलमान का मारा जाना नहीं बल्कि एक कलाकार का मारा जाना था। अपने मारे जाने के बारे में उसका बयान सांप्रदायिक शक्तियों की नीयत पर एक बड़ा सवाल खड़ा करता है-

और मुझे इस तरह मारा गया
जैसे एक साथ बहुत से दूसरे लोग मारे जा रहे हूँ
मेरे जीवित होने का कोई बड़ा मकसद नहीं था
लेकिन मुझे इस तरह मारा गया
जैसे मुझे मारना कोई बड़ा मकसद हो।^{३३}

इसी तरह इनकी 'अंजार' कविता भी २००१ के भूकंप और २००२ की गुजरात की हिंसा को याद करते हुए यह चिंता व्यक्त करती है कि भूगर्भ के मलबे के नीचे मासूम बच्चों की चीत्कार पर तो हमारा कोई वश नहीं था लेकिन जो हिंसा के दौरान कई-कई जगह अंजार फैल गया था, जो हमारी भावी पीढ़ी का मजार बन गया था, यह दृश्य अधिक चिंता का विषय था-

इस बार नई-नई जगह फैला था अंजार
इस बार उड़ती हुई धरती नहीं लपकती-लीलती हुई आग थी
रक्त और मृत्यु ही थे मुख्य प्रश्न पत्र
अंजार से निकल कर दूर-दूर तक फैले हुए अंजार के रिक्त स्थान

xxx

सवाल तमाम आपस में गडमड
अंजार भूगर्भ में दबी हुई एक चीत्कार
जगह-जगह अंजार हमारे भविष्य का मजारा^{३४}

सांप्रदायिक घटनाएँ कैसे बच्चों के भविष्य के लिए और इस तरह संपूर्ण भावी पीढ़ी के लिए मजारा बन जाती हैं, इस कड़वे सच की ओर यह कविता संकेत करती है।

इस तरह वैश्वीकरण के इस दौर में राजनीतिक तौर पर भले ही विकास की बड़ी-बड़ी घोषणाएँ की जा रही हैं किंतु मंगलेश डबराल का संवेदनशील मन वैश्वीकरण के बाद के यथार्थ की उन तमाम स्थितियों की तलाश करता है जिसका संबंध हाशिए पर खड़े आम आदमी से है। जिस तरह सुविधाओं के बीच पल-बढ़ रहा संपन्न वर्ग और अधिक समृद्ध किंतु संवेदना के धरातल पर खोखला होता जा रहा है, यह चिंता का विषय है। बदलते जीवन मूल्यों के प्रति चिंतित सजग बुद्धिजीवी एवं रचनाकार का इस तरह चिंतित होना उसकी सामान्य व्यक्ति के प्रति प्रतिबद्धता का सूचक है।

संदर्भ :

- | | |
|------------------------------|---------------------------------|
| १. आवाज भी एक जगह है, पृ. ९१ | २०. वही, पृ १४ |
| २. कवि का अकेलापन, पृ. ९८-९९ | २१. वही, पृ २८-२९ |
| ३. पहाड़ पर लालटेन, पृ. ६३ | २२. वही, पृ ८४ |
| ४. कविता की संगत, पृ. १२५ | २३. आवाज भी एक जगह है, पृ. १५ |
| ५. पहाड़ पर लालटेन, पृ. ४३ | २४. वही, पृ ८८ |
| ६. वही, पृ २८ | २५. वही, पृ ८५ |
| ७. वही, पृ ११-१२ | २६. वही, पृ ८२ |
| ८. वही, पृ ३०-३१ | २७. वही, पृ ४२ |
| ९. वही, पृ ६७ | २८. वही, पृ ५८-५९ |
| १०. कवि ने कहा, पृ. ५२ | २९. नए युग में शत्रु, पृ. १५ |
| ११. वही, पृ ६२ | ३०. वही, पृ २७ |
| १२. वही, पृ ५७ | ३१. वही, पृ ४४-४५ |
| १३. वही, पृ ५८ | ३२. कवि ने कहा, पृ. ९ |
| १४. वही, पृ ४२ | ३३. नए युग में शत्रु, पृ. ५२-५३ |
| १५. वही, पृ ५७ | ३४. वही, पृ ५४ |
| १६. वही, पृ ८२ | |
| १७. वही, पृ ४९ | |
| १८. वही, पृ ५९ | |
| १९. हम जो देखते हैं, पृ. १२ | |

□

— अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
के. जे. सोमैया कला व वाणिज्य
महाविद्यालय,
विद्याविहार, मुंबई-४०००७७

आकलन

- पंकज चतुर्वेदी

यातना का प्रतिकार प्रेम

मंगलेश डबराल सरापा कवि हैं। उनके व्यक्तित्व और कविता, संवेदना और विचारशीलता, प्रेम और प्रतिबद्धता के बीच कोई फाँक नहीं। इस तरह विचार, संवेदना, सौंदर्यबोध और मूल्यनिष्ठा की संश्लिष्ट समग्रता उनके यहाँ कविता में रूपान्तरित हुई है। उन्होंने अपने समूचे वजूद से कविता को संभव किया है, क्योंकि उससे कम या अधूरा कुछ करना एक गुनाह ही होता —

वह कोई बहुत बड़ा मीर था

जिसने कहा प्रेम एक भारी पत्थर है

कैसे उठेगा तुझ जैसे कमज़ोर से

मैंने सोचा

इसे उठाऊँ टुकड़ों-टुकड़ों में

पर तब वह कहाँ होगा प्रेम

वह तो होगा एक हत्याकांड।’

सभ्यता के विकास, खासकर सूचना एवं संचार-क्रांति के मौजूदा दौर में मानवीय संवेदना का सबसे ज़्यादा क्षरण हुआ है। नव-उदार पूँजीवाद की छाया में जैसे-जैसे मध्यवर्ग आत्म-मुग्ध, उपभोगवादी और निष्करण होता गया है; कविता को उसने अक्सर यों बरता है, मानो वह सृजन की नहीं, उत्पादन की वस्तु हो। जैसे उसके लिए कौशल काफ़ी हो, कवि का अपने को दाँव पर लगाना ज़रूरी न हो। ऐसे परिदृश्य में मंगलेश ने यह कभी विस्मृत नहीं किया कि कवि की सचाई की पहचान उसकी वेधयता से होती है और यह भी कि सत्य का आघात सहे बिना उसे जाना नहीं जा सकता। समकालीन कवियों में यथार्थ का आभ्यंतरीकरण शायद उनके यहाँ गहनतम है। इसलिए वह

उसकी निस्संग गवाही के नहीं, मार्मिक साक्षात्कार के कवि हैं। यह मार्मिकता उनकी कविता की शक्ति, सुंदरता और विशिष्टता की उत्स है। इसी की बदौलत संवेदना और मननशीलता का तरल पारदर्शी आलोक हम उनके यहाँ महसूस करते हैं; जो अपने सौंदर्य से सिर्फ आकृष्ट नहीं करता, बल्कि कार्य-कारण-सम्बन्ध की चेतना से विचलित भी करता है।

“... सपने में हमें दिखती हैं अपने जीवन की जड़ें साफ़

पानी में डूबी हुई चाँद दिखता है एक छोटे-से अँधेरे कमरे में चमकता हुआ।

सपने में हम देखते हैं कि हम अच्छे आदमी हैं। देखते हैं एक पुराना

टूटा-फूटा आईना. देखते हैं हमारी नाक से बहकर आ रहा है खून।”

आज से लगभग पैंतालीस बरस पहले मंगलेश डबराल को टिहरी गढ़वाल ज़िले के काफलपानी गाँव से विस्थापित होकर जीविका की तलाश में देश की राजधानी दिल्ली की शरण लेनी पड़ी थी। गोकि वह इसे ‘एक धुँधली युवावस्था में पहाड़ से पत्थर की तरह लुढ़कते हुए’ आना कहते हैं और इससे यह खुशफ़हमी हो सकती है कि वह किसी सहज घटना की ओर इशारा कर रहे हैं। मगर उनके पहले कविता-संग्रह की शीर्षक कविता ‘पहाड़ पर लालटेन’ (१९८१) का एक बिम्ब याद करें। “वह पहाड़ दुख की तरह टूटता आता है हर साल”, तो मालूम होगा कि यह विस्थापन उनका चुनाव नहीं, बल्कि विवशता थी। इसलिए आरम्भिक कविताओं में एक ओर पीछे छूट गये प्राकृतिक परिवेश की आत्मीय और सजल स्मृतियाँ हैं, तो दूसरी तरफ़ युयुत्सा है, जो उस जीवन की विपन्नता और अवसाद के प्रतिकार के लिए कवि को ज़रूरी लगी। चाहे वह ‘पहाड़ पर एक तेज़ आँख की तरह जलती लालटेन के धीरे-धीरे आग बनने’ का बिम्ब हो या ‘गाँव में एक बाघ के डुकरने की आवाज़’ का सुन पड़ना; इन्हें आठवें दशक में मुख्य तौर पर नक्सलवाड़ी की क्रांतिधर्मिता से उपजी उम्मीद और बेचैनी के प्रतीकों की तरह पढ़ा जा सकता है। कवि के भीतर पहाड़ी गाँव से आये हुए एक निश्छल, संवेदनशील और न्यायप्रिय इंसान को हम बराबर महसूस करते हैं, जो शहरी चकाचैंध में व्याप्त अन्याय, अत्याचार और भ्रष्टता से बहुत सावधान, सहमा हुआ और आहत है। लेकिन कुछ मूल्यों के लिए यह संघर्ष किया जाना अनिवार्य था, जैसा कि स्वयं मंगलेश डबराल ने लिखा है— यह एक काफ़ी शांत, सिमटी हुई और प्रकृतिपूर्ण जगह से एक ऐसी दुनिया में आना था, जो बहुत फैली हुई, हलचल से भरी हुई और हमलावर थी। मैंने और मुझ-सरीखे कई दोस्तों ने इस शहर के भीतर अपना एक शहर खोज लिया था और हम चमचमाती रोशनियों के पीछे किसी नीम-अँधेरे में रहते थे। ... दरअसल, हम लोग इस महानगर में अपना सफल भविष्य बनाने नहीं, बल्कि एक बदलाव के गहरे हिस्सेदार होने के लिए आये थे। एक स्तर पर उनकी समूची काव्य-यात्रा ‘विस्थापन के अर्थ’ की तलाश है और ‘दुनिया को बदलने के पुराने, अनिवार्य और असंभव काम’ से वाबस्ता है। यह विडम्बना ही कही जायेगी कि कवि को अपनी मूलभूमि से बिछुड़ना पड़ा और शहर के अजनबी और क्रूर चेहरे को वह कभी अपना अंतरंग बना नहीं सका। जिस संस्कृति से विस्मय और विरक्ति थी, उसी का हिस्सा बन जाने की कचोट, उसका आत्म-समीचीन

व्यंग्य इस मुस्कराहट में छिपा है—

— मैंने शहर को देखा और मैं मुस्कराया
वहाँ कोई कैसे रह सकता है
यह जानने मैं गया
और वापस न आया।’

१९८८ में दूसरे कविता-संग्रह ‘घर का रास्ता’ के आते-आते मंगलेश डबराल के सामने स्पष्ट हो जाता है। उन्हीं के शब्दों में कहें तो। “कुछ भी उस तरह आसान नहीं है जैसा हम सोचते थे।” मगर विफलता के एहसास से उनकी कविता की गहनता और मर्मस्पर्शिता बढ़ती है। दो काव्यांश गौरतलब हैं—

— गिरते हुए उसकी एक झलक
देखी मैंने
जो हँसते हुए मुझे गिरा रहा था
लगातार।’
— इसी तरह चलता है संसार
कुछ दिन मन में विद्रोह होता है, घुमड़न रहती है
कोई दुख देखकर नीची कर लेनी होती है निगाहा।’

इन कविताओं में महानगरीय जीवन में गुलामी के कुछ नये रूपों की शिनाख्त है और गाँव की ज़िंदगी के और अभावग्रस्त और तकलीफ़देह हो जाने का दंश। मंगलेश डबराल बेशक कवियों की मैनोशी, काव्यात्मक चिन्ताओं और उनके बन-ठनकर टहलने को गैर-ज़रूरी मानते हैं, क्योंकि उनके मुताबिक़ एक सच्चे कवि की पहचान यह है कि वह ‘रोज़ रात में खुद को लहलुहान’ पाता है। यातना के इस मंज़र से गुज़रकर वह अपनी नागरिकता का शुल्क ही अदा नहीं करते, मुख्यधारा की संस्कृति से अपनी नाइत्तिफाकी जताते हैं। यों उनके यहाँ जो आत्म-करुणा है, वह उसी वक्त प्रतिकार की भी कार्रवाई है। इसका साक्ष्य हमें एक दूसरी कविता में मिलता है, जिससे लगता है कि उनकी कविताएँ एक-दूसरे से स्वायत्त नहीं हैं, बल्कि समवेत रूप में अपने समय का एक संपूर्ण पाठ निर्मित करती हैं—

— परिस्थिति बहुत विकट है मैंने कहा
यहाँ तक कि नीला रंग

किसी को डरा सकता है
बदहवास कोई चींखने लग सकता है
इस आनंद मंगल जगह में'

प्रसिद्ध कवि आलोकधन्वा कहते हैं कि 'मंगलेश फूल की तरह नाजुक और पवित्रा हैं' निश्चय ही स्वभाव की सचाई, कोमलता, संजीदगी, निस्पृहता और युयुत्सा उन्हें अपनी जड़ों से हासिल हुई है, पर इन मूल्यों को उन्होंने अपनी प्रतिश्रुति से अक्षुण्ण रखा है— 'मैं भूल नहीं जाना चाहता था/ अपने घर का रास्ता।'

मंगलेश डबराल की काव्यानुभूति की बनावट में उनके स्वभाव की केन्द्रीय भूमिका है। उनके अंदाज़े-बयाँ में संकोच, मर्यादा और करुणा की एक लज्जिशा है। एक आक्रामक, वाचाल और लालची समय में उन्होंने सफलता नहीं, सार्थकता को स्पृहणीय माना है और जब उनका मंतव्य यह हो कि मनुष्य होना सबसे बड़ी सार्थकता है, तो ऐसा नहीं कि यह कोई आसान मकसद है, बल्कि सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि यह आसानी कितनी दुश्वार है। 'संगतकार' के सतत संयम और त्याग में इसकी झलक द्रष्टव्य है।

“... उसकी आवाज़ में जो एक हिचक साफ़ सुनाई देती है
या अपने स्वर को ऊँचा न उठाने की जो कोशिश है
उसे विफलता नहीं
उसकी मनुष्यता समझा जाना चाहिए।’

(‘आवाज़ भी एक जगह है’, २०००)

मंगलेश की कविताओं में समय के साथ ट्रेजेडी का बोध इतना गहन और सशक्त होता गया है कि उसे किसी प्रशंसा, पुरस्कार या प्रलोभन से विचलित नहीं किया जा सकता। समय की नृशंसता का इतना साफ़, सीधा और अचूक बयान शायद ही किसी ने दर्ज किया हो—

— यह ऐसा समय है
जब कोई हो जा सकता है अंधा लँगड़ा
बहरा, बेघर, पागला।’

(‘हम जो देखते हैं’, १९९५)

ऐसे समय में आततायी शक्तियों से कोई निर्णायक संग्राम नहीं किया जा सका, जिसकी कविता के सफ़र की शुरुआत में एक उम्मीद नज़र आती थी। इसलिए कवि को 'अपनी तस्वीर' में 'किसी युद्ध से लौटने की यातना' दिखती है। मंगलेश तृणमूल स्तर की यथार्थ-चेतना के कवि हैं।

उनकी कला और दार्शनिकता इसी चेतना की कोख से जनमती है। मसलन वैराग्य किसी गहरे सरोकार की निशानी हो सकता है और सुंदरता के अभाव में भी उसके इसरार का अपना सौंदर्य है।

— एक कवि अपने लिए एक हाशिया खोजता है.

हाशिया फैला है कवि की उम्र की तरह। जो नहीं है उसके इंतज़ार की तरह।

जो नहीं होगा उसकी उम्मीद की तरह।’

कविता में मंगलेश डबराल ने ‘जोरों से’ बोलने की बजाए अपनी बात को ‘सुंदर कमज़ोर काँपती हुई आवाज़’ में कहना पसंद किया है।

— जोरों से नहीं बल्कि

बार-बार कहता था मैं अपनी बात

उसकी पूरी दुर्बलता के साथ

किसी उम्मीद में बतलाता था निराशाएँ’

उनकी कविता की संजीदगी, सांद्रता और औदात्य उनके इसी लहजे पर निर्भर है। यह रूप और अंतर्वस्तु की द्वन्द्वात्मक संहति है। बुनियादी तौर पर अभिव्यक्ति की यह शैली लोकतंत्रा की सच्ची संस्कृति से निर्मित है। असम्प्रेषणीय होना दमनकारी सत्ता-तंत्रा की रणनीति हो सकती है, मगर कवि के लिए मंगलेश चाहते हैं— ‘कुछ सरल शब्द/ जिन्हें बोलते हुए शर्म न महसूस हो।’ भाषा में सरलता, प्रेम में निश्छलता और कविता में पारदर्शिता की माँग दरअसल जीवन में एक ही तत्त्व की चाहत है और वह है सचाई।

— एक सरल वाक्य बचाना मेरा उद्देश्य है

मसलन यह कि हम इंसान हैं

मैं चाहता हूँ इस वाक्य की सचाई बची रहे....

मैं चाहता हूँ निराशा बची रहे

जो फिर से एक उम्मीद

पैदा करती है अपने लिए

शब्द बचे रहें

जो चिड़ियों की तरह कभी पकड़ में नहीं आते

प्रेम में बचकानापन बचा रहे

कवियों में बची रहे थोड़ी लज्जा।’

उत्कृष्टता, परिष्कार और प्रभविष्णुता के लिहाज़ से २००० में प्रकाशित ‘आवाज़ भी एक

जगह है' मंगलेश डबराल का ही नहीं, हिन्दी कविता का एक अप्रतिम संग्रह है। इसी ने कविता में 'मंगलेशियत' की अवधारणा पर विचार और उसे स्वीकार करने के लिए काव्य-मर्मज्ञों को विवश किया। उन्नीसवीं सदी के अंग्रेजी के कला एवं साहित्य-चिंतक, निबंधकार वाल्टर पेटर का एक मशहूर कथन है। "ऑल आर्ट एस्प्रायर्स टु दि कंडीशन ऑफ़ म्यूज़िक", यानी समस्त कला अपनी अंतिम परिणति में संगीत हो जाना चाहती है। यों यह विशेषता 'हम जो देखते हैं' उन की कविताओं में काफ़ी हद तक मौजूद है, मगर परवर्ती संग्रह तो और अधिक अपने आशयों की सघनता तथा व्याप्ति में संगीत का-सा प्रभाव पैदा करते हैं। अगरचे यह भूलना मुनासिब न होगा कि संगीत से कविता की भूमिका इस मानी में अलग है कि वह सांसारिक अराजकता, अन्याय और हिंसा से दूर नहीं ले जाती, बल्कि इनके 'प्रतिकार' को ही संगीत के तौर पर आविष्कृत करती है।

— जो कुछ भी था जहाँ-तहाँ हर तरफ़

शोर की तरह लिखा हुआ

उसे ही लिखता मैं

संगीत की तरह।'

सबब यह कि कविता विस्मरण नहीं, विचलन को अपना प्रस्थान-बिंदु बनाती है। उसकी आकांक्षा इतिहास का हिस्सा बनने की नहीं, उसे बदलने की होती है। इसलिए वह प्रेम की ही मार्निद निरी 'वास्तविक' या 'सामान्य' स्थितियों में संभव नहीं होती, बल्कि उनकी अपेक्षा एक उदात्त भूमि पर रची जाती है। कवि के एक अर्थ-संदर्भ को विस्तृत करके कहें, तो वह 'इतिहास के बाहर' घटित होती है और उसके अनुभव के अनन्तर हम पाते हैं कि हम अपने उसी रोज़मर्रा के बियाबान में लौट आये हैं।

— चुंबन एक ऐसी घटना है जो इतिहास के बाहर होती है।

एक बिलकुल अवास्तविक संसार में

अब सब कुछ सामान्य है. हम एक आँधी या एक आग से बचकर आये हैं.

हम जीवित हैं और इतिहास में लौट चुके हैं और राहत की एक गहरी साँस ले रहे हैं।'

यह 'राहत की साँस' कवि को मयस्सर नहीं, जैसा कि ताद्यूश रूज़ेविच मानते हैं कि आधुनिक कविता 'साँस के लिए एक युद्ध' की तरह है। यों 'राहत में रहना' व्यावहारिक होने — मंगलेश डबराल के शब्दों में 'अपनी ही किसी आग, किसी क्रोध, प्रेम या विरोध' को नष्ट कर देने पर ही मुमकिन है। लाज़िम है कि उन्हें चीन के ली पाइ सरीखे प्राचीन महाकवि में अपना आदर्श मिलता है; जिसकी अनिवार्य विशेषताएँ आत्मविस्मृति, प्रेम, सौंदर्य-दृष्टि, प्रकृति से संसक्ति, उत्सवों, युद्धों, महामहिमों तथा सत्ता के मद में चूर सरकारों का प्रतिकार और गरीबों, मज़दूरों तथा स्त्रियों की पीड़ा से प्रतिबद्धता है। निराला की याद आती है, जिन्होंने कभी निजी हित की साधना नहीं की, समीचीन

जबकि उनके इर्द-गिर्द स्वार्थपरता का आलम था। 'सोचा न कभी/अपने भविष्य की रचना पर चल रहे सभी' मंगलेश इस दारुण हकीकत से जी नहीं चुराते, बल्कि इसका सामना करते हैं कि हमने जो सभ्यता बनायी है, उसे अपने इन पूर्वजों की कोई स्मृति नहीं है—

“सड़कों पर बसों में बैठकघरों में इतनी बड़ी भीड़ में कोई नहीं कहता

आज मुझे निराला की कुछ पंक्तियाँ याद आयीं। कोई नहीं कहता मैंने

नागार्जुन को पढ़ा है। कोई नहीं कहता किस तरह मरे मुक्तिबोध।”

पाँचवें कविता-संग्रह 'नये युग में शत्रु' (२०१३) तक आते-आते विडम्बना का यह एहसास मानो अपने चरम बिन्दु पर पहुँच जाता है—

“लेकिन कहाँ लोप हो गये वे हकीर और फ़कीर

जो सब कुछ छोड़कर चले जाते थे और फिर खाली हाथ लौट आते

गरीबी और दीवानगी किस रसातल में गयी।”

मंगलेश की एक कविता 'क्रेमलिन कथा' के साक्ष्य से कहें, तो बीसवीं सदी के आखिर में आम जनता के पास सबकी मुक्ति का कोई स्वप्न नहीं रह गया। इसकी बजाए उसमें-से हरेक आदमी अब 'अपने लिए एक-एक क्रेमलिन बनाने का सपना देखता है।' नतीजतन यह एक प्रकार से फ़ासीवादी दौर की ही वापसी है—

“जगह-जगह अब भी बने हुए हैं छोटे-छोटे यातना शिविर

जो जितना ताक़तवर उसके भीतर बैठा हुआ उसी के आकार का एक हिटलर

और आज भी अँधेरे का वही युग’

लोकतंत्रा की इससे बड़ी हार क्या होगी कि हिंसा और विध्वंस करनेवाली ताक़तों को व्यापक जन-समर्थन हासिल है—

— जिसने कुछ रचा नहीं समाज में

उसी का हो चला समाज

वही है नियंता जो कहता है तोड़ूँगा अभी और भी कुछ

जो है खूँखार हँसी है उसके पास

जो नष्ट कर सकता है उसी का है सम्मान

झूठ फ़िलहाल जाना जाता है सच की तरह

प्रेम की जगह सिंहासन पर विराजती घृणा।’

ऐसे तत्त्व सिर्फ राजनीति तक सीमित नहीं, कला, संस्कृति और विज्ञापन के क्षेत्रों में भी इनका दबदबा है।

— महँगी ताकतवर चेहरे हर तरफ़ बढ़ते जा रहे हैं....

एक महानायक समाज को आँख मारता है

इन्हीं चेहरों से बना है हमारे वक्त का प्रमुख आततायी विचार’

एकध्रुवीय हो चुकी दुनिया अमेरिका के नेतृत्व में जिस नव-उदार आर्थिक सैन्य साम्राज्यवाद के साथे में साँस लेने को अभिशप्त है; उसके मुख्तलिफ़ रूपों और पहलुओं की शिनाख्त की बदौलत मंगलेश डबराल की कविता हमारे समय के शायद सबसे अनिवार्य, विचारोत्तेजक और मार्मिक पाठ में बदल जाती है।

— अंततः हमारा शत्रु भी एक नये युग में प्रवेश करता है

अपने जूतों, कपड़ों, और मोबाइलों के साथ....

वह अपने को कंप्यूटरों, टेलीविज़नों, मोबाइलों

आइपैडों की जटिल आँतों के भीतर फैला देता है

अचानक किसी महँगी गाड़ी के भीतर उसकी छाया नज़र आती है’’

‘होटल, दूकान और अस्पताल’ ही इस नयी विश्व-व्यवस्था के सच हैं। यह ‘युद्ध के भी कुशल प्रबंधन’ में यत्नीन करती है और यातना के व्यवसायीकरण में इसे कोई संकोच नहीं।

— एक-सी खूबी के साथ प्रबंधित किये जा रहे हैं

मल्टीप्लैक्स और मेगामॉल गुआंतेनामो और अबू ग़रेब के यातना कक्ष’’

एक स्तर पर यह निज़ाम ‘नये बैंक’ की तरह ‘विशाल काँच की दीवार के पार एक सपाट और रोशन जगह है’, जिसमें सब कुछ अस्थिर और दिखावटी है और जिसके पास ‘बूढ़े लोगों की पेंशन का हिसाब सँभालने’ की सहृदयता नहीं, बल्कि ‘सिर्फ़ दिये जानेवाले कर्ज़ और लिये जानेवाले ब्याज का हिसाब रखने की ठंडी पारदर्शिता है।’ असद ज़ैदी का यह आकलन सही है कि ‘मंगलेश की कविता की मार्मिकता स्फटिक जैसी कठोरता लिये हुए है।’ इसकी वजह यह है कि वह यथार्थ की तलख़ी का, उसके समस्त ब्यौरों में सामना करते हैं और उसे ललित, अमूर्त या ‘काव्यात्मक’ बना देने के मोह में नहीं पड़ते। मसलन सभ्यता के हाशिये पर जीने को मजबूर आदिवासियों से भारत के शासक-वर्ग का सुलूक कितना अमानुषिक है और किस तरह वह उसकी बहुमूल्य प्राकृतिक सम्पदा औने-पौने दामों में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को बेचने पर आमामदा है। इस सच को सादगी से कह

सकना इसके प्रति कवि की संजीदगी का सुबूत है—

—अखबारी रिपोर्टें बतलाती हैं कि जो लोग उस पर शासन करते हैं

देश के ६३६ में से २३० जिलों में उनका उससे मनुष्यों जैसा कोई सरोकार नहीं रह गया है

उन्हें सिर्फ उसके पैरों तले की ज़मीन में दबी हुई

सोने की एक नयी चिड़िया दिखाई देती है।’

जैसे-जैसे नव-उदार पूँजीवाद व्यापक और सशक्त होता गया है, उसके द्वारा पोषित पितृसत्तात्मक और हिन्दुत्ववादी प्रभु-वर्ग की बर्बरता और हिंसा बढ़ी है। ज़ाहिर है कि इसके निशाने पर सबसे ज्यादा स्त्रियाँ, अल्पसंख्यक और दलित रहते हैं। मंगलेश डबराल की कविता न सिर्फ इन समुदायों के समर्थन में खड़ी है। जो शायद सामान्य तौर पर वांछनीय एक विशेषता है। उससे बड़ी बात यह है कि यह उनसे एकात्म है। यों उसने अपने अन्तःकरण की विशालता को सत्यापित किया है। “आँसुओं से भीगे हुए लोगों को कविता ले जाती है अपने भीतर।’ दबे-कुचले वर्गों की साधारणता की वह सहचर है, इसलिए उससे सहानुभूति ही नहीं रखती, उसका सम्मान भी करती है। प्रतिभा या श्रेष्ठता को मंगलेश ने मनुष्य का जन्मजात गुण कभी नहीं माना। उनके लिए वह श्रेष्ठता अस्वीकार्य है, जो सामान्य जन-समाज पर ऊपर से थोप दी जाय। इसके विपरीत वह उस औदात्य के क्रायल हैं, जिसे हर साधारण जन अपने अध्यवसाय और निष्ठा से अर्जित कर सकता है और जिसका एक स्वतंत्र और न्यायप्रिय व्यवस्था में उसे अधिकार होना चाहिए। स्वयं उनकी कविता इसकी साक्ष्य है, जिसके उद्भव और उन्नयन दोनों में कोई करिश्मा नहीं है, बल्कि जो उनके संघर्ष, संवेदना और चिंतन के संश्लेष से उत्तरोत्तर उत्कृष्ट होती गयी है। उसके इस तरक्कीयाफ़ता सफ़र के मद्देनज़र एक तरफ़ आधुनिक हिन्दी के प्रेमचंद, मुक्तिबोध और रघुवीर सहाय सरीखे रचनाकार याद आते हैं, दूसरी ओर उनकी ही यह काव्य-पंक्ति— एक साधारण जीवन में एक असाधारण आग जलती रहती है।’

मंगलेश डबराल की काव्य-यात्रा में साधारण जन के प्रति उनकी अजस्र ममता और करुणा अन्तःसलिल है। इसी की बदैलत उन्होंने हिंसक होते समय में भी अपनी कविता की आंतरिक कोमलता, संगीत और सजलता को बचाकर रखा है। एक तपते हुए और बंजर यथार्थ-बोध के बरअक्स प्यार और संवेदना की यह अनिवार्य कसौटी उनके सृजन ही नहीं, जीवन-दर्शन को भी हमारे लिए आत्मीय और मूल्यवान् बनाती है— ‘अपने भीतर जाओ और एक नमी को छुओ/ देखो वह बची हुई है या नहीं इस निर्मम समय में।’ इसलिए पहले की जगह अगर आम आदमी है, जो विस्मृत, वंचित, उत्पीड़ित, नष्ट अथवा मृत है, तो कवि उसके बदले हमेशा हाज़िरी लगाता हुआ दूसरा है। पहले से उसकी भिन्नता की कोई वजह नहीं है, वह महज़ इतिफ़ाक़ है—

“मैं पहले की चीख हूँ, पहले का शोक, पहले का प्रेम
पहले को याद करता हुआ एक अंतहीन दूसरा।”

कहने की ज़रूरत नहीं कि सामान्य जन से यह अनन्त सादृश्य, असीम एकात्मता और इसलिए अदम्य संवेदनात्मक प्रतिबद्धता मंगलेश की कविता की एक बड़ी उपलब्धि है। इसी औदात्य का दूसरा पहलू उनके संवेदना-जगत् में स्त्रीत्व की मौजूदगी है। प्यार का शायद सर्वश्रेष्ठ रूप अपने प्रिय की विशेषताओं का आत्मसातीकरण है। उसके प्रति कृतज्ञता की भी यह संभवतः सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति है। मनुष्य-समाज ने सत्ता, सम्पत्ति, सम्प्रदाय, जाति, जेंडर, नस्ल और राष्ट्रीयता के आधार पर जो विभाजक रेखाएँ खींच रखी हैं, उन्हें मिटाने को मंगलेश की कविता अपना प्राथमिक कर्तव्य मानती है। विषमता और पार्थक्य की दीवारों को गिराने का काम जितने संजीदा, संपूर्ण और प्रभावशाली ढंग से उन्होंने किया है; शायद वह इस वक्त की हिन्दी कविता में अन्यतम है। ऐसा करके वह अपनी कविता को और समृद्ध, सुंदर और संवेदनक्षम बनाते हैं —

— एक स्त्री के कारण तुम्हारा रास्ता अँधेरे में नहीं कटा

रोशनी दिखी इधर-उधर

एक स्त्री के कारण एक स्त्री

बची रही तुम्हारे भीतर।’

निश्चय ही प्यार और करुणा से निःसृत आलोक का कोई विकल्प नहीं। मगर कविता के द्वारा लोकतंत्रा के बुनियादी सिद्धांतों, यानी समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व की अहमीयत के इसार के बावजूद स्वाधीन भारत की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि विगत कुछ दशकों में सत्ता-केंद्रित राजनीति और राजनीतिक सत्ता-तंत्र दोनों अक्सर प्रच्छन्न या खुले तौर पर अधिकाधिक साम्प्रदायिक हुए हैं। कभी उन्होंने साम्प्रदायिक हिंसा और विध्वंस को बढ़ावा दिया है और कभी स्वयं उसमें लिप्त रहे हैं। संविधान की प्रस्तावना के इस आपराधिक उल्लंघन से वैमनस्य और तबाही के अलावा कुछ हासिल नहीं होगा। मंगलेश डबराल की एक कविता ‘अंजार’ से हमें एहसास होता है कि भूकम्प सरीखी प्राकृतिक आपदा से यह कहीं ज्यादा भयावह है, क्योंकि यह मनुष्य-कृत है। एक ‘‘लपकती-लीलती हुई आग’’, जिसने मानो इन्तिहान देती हुई मनुष्यता के समक्ष ‘रक्त और मृत्यु को ही मुख्य प्रश्नपत्र’ बना दिया है। भूकम्प में अगर ‘भूगर्भ का अंधकार मलबे की तरह उठकर आता है’, तो साम्प्रदायिकता मनुष्य के तामसिक मनोलोक की अभिव्यक्ति है। उसका विस्तार उन सपनों को जलाकर राख कर देगा, जो हमारे स्वाधीनता-सेनानियों ने सँजोये थे — ‘‘जगह-जगह अंजार हमारे भविष्य का मजारा।’’ प्रसंगवश, २००२ में गुजरात में अल्पसंख्यकों का क्रल्लेआम आजाद हिन्दुस्तान की शायद सबसे स्तब्ध करनेवाली त्रासदी थी। हिन्दी कविता ने एकजुट होकर व्यापक और विविध स्तर पर उस नृशंसता का ज़बरदस्त प्रतिकार किया था। आलोकधन्वा के शब्दों का सहारा लेकर कहें, तो इतिहास में ‘इस बात का महत्त्व कभी धूमिल नहीं होगा’ कि मंगलेश डबराल की कविता ‘गुजरात के मृतक का बयान’ इस सामूहिक रचनात्मक कार्रवाई की शीर्ष उपलब्धि के तौर पर तस्लीम की गयी। यों इसकी सार्थकता के कई गौरतलब पहलू हैं, पर सबसे मार्मिक अंतर्विरोध यह है कि एक साधारण श्रमिक-कारिगर के अस्तित्व-रक्षा के संघर्ष में सत्ता कभी समीचीन

मददगार तो नहीं ही रही, जो उसका स्वाभाविक कर्तव्य या 'राजधर्म' था; उलटे वक्त के एक नाजुक मोड़ पर उसकी और उसके जैसे अदना लोगों की हत्या को एक महान् काम की तरह अंजाम देने में उसे कोई हिचक नहीं हुई—

— और मुझे इस तरह मारा गया

जैसे एक साथ बहुत से दूसरे लोग मारे जा रहे हों

मेरे जीवित होने का कोई बड़ा मकसद नहीं था

लेकिन मुझे इस तरह मारा गया

जैसे मुझे मारना कोई बड़ा मकसद हो”

इंसान को जिंदा जलाकर मार डालने की क्रूरता पर मंगलेश ने बहुत हैरत और क्षोभ ज़ाहिर किया है। मसलन इसी कविता में—

— जब मुझे जलाकर पूरा मार दिया गया

तब तक मुझे आग के ऐसे इस्तेमाल के बारे में पता नहीं था”

आग को वह मानवीय मूल्यों की आभा और अन्याय के प्रति आक्रोश की आँच के रूप में मनुष्य-आत्मा के लिए अपरिहार्य मानते हैं और इसलिए भी कि पूर्वजों ने उसका आविष्कार मनुष्यता के पोषण के लिए किया था, उत्पीड़न के लिए नहीं—

— आग लगानेवालो

इससे दूसरों के घर मत जलाओ

आग मनुष्य की सबसे पुरानी अच्छाई है

यह आत्मा में निवास करती है और हमारा भोजन पकाती है”

कैसी विडम्बना है कि हमारे समय में एक ओर आग के मनुष्यहंता इस्तेमाल के तरीके विकसित किये गये हैं; दूसरी तरफ़ उसकी श्रेष्ठता को अंगीकार किया जा रहा है, तो उसके क्रांतिकारी आशयों से विच्छिन्न करके। महज़ सिद्धांत, विज्ञापन या शोभा के वास्ते। आग की ऐसी निष्क्रिय-निर्जीव चमक से सत्ता को भला क्या एतराज़ हो सकता है? मंगलेश २०१२ में लिखी गयी एक कविता में अपने बचपन को याद करते हैं, जब उनके पिता एक 'सुंदर-सी' टॉर्च लाये थे। उसे ठीक-ठीक न जानने के कारण पड़ोस की एक वृद्ध स्त्री ने उससे चूल्हा जलाने के लिए थोड़ी-सी आग माँगी थी। पिता ने जब सचाई बयान की, तो उस स्त्री ने कहा। “उजाले में थोड़ा आग भी होती तो कितना अच्छा था।’ प्रसंगवश, शमशेर का एक शेर है— कहीं सर्द खूँ में तड़पती है बिजली/जमाने का रदो-बदल कोई लाए।’ इसके बरअक्स अब उजाला तो बहुत है, पर अपनी

आंतरिक ऊर्जा से महरूम होकर वह यथास्थिति को मज़बूत करने के काम आता है। इस परिदृश्य में प्रतिगामी शक्तियाँ बहुत संगठित और हमलावर हैं, जबकि उनका प्रतिपक्ष उतना ही बिखरा हुआ और लाचार नज़र आता है—

— इन दिनों हर कोई जल्दी में है

लोग थोड़ी-थोड़ी देर के लिए झलकते हैं अकेले पीते हुए

धुंधले आकारों जैसे वे एक-दूसरे की तरफ आते हैं

उनके हाथ में होता है वही अकेलेपन का गिलास”

मंगलेश की कविता में दुख, विवशता, अपमान और अन्याय के संदर्भ क्रमशः बढ़ते गये हैं; क्योंकि लोगों के बीच की बेगानगी, खुदगर्ज़ी, अस्थिरता और संवेदनहीनता बेतहाशा बढ़ी है। संचार-साधनों पर ‘कुछ दूसरी तरह के वार्तालाप’ हैं, जिनमें ‘महज़ व्यापार महज़ लेनदेन खरीद-फ़रोख़्त की आवाज़ें’ सुनायी पड़ती हैं। पूँजी के वर्चस्व और वस्तु-पूजा के शिकार तो लोग पहले भी किसी हद तक थे, पर इस दर्जे का आत्म-छल, अभिनय और अगंभीरता उनमें शायद कभी न थी। जब वे सिर्फ़ सत्ता, सम्पत्ति और सफलता के तलबगार रह गये हों, तो उनकी और मंज़िल भी क्या हो सकती थी? जिस समाज में सच को जानने की परवाह, उसका सामना करने की हिम्मत और उसे बदलने की बेचैनी न रह गयी हो, ज़ाहिर है कि वह लड़ाई के सबसे मुश्किल दौर में है—

— नये गुलाम इतने मज़े में दिखते हैं

कि उन्हें किसी दुख के बारे में बताना कठिन लगता है....

और यह भी तय है कि इस बार लड़ना ज़्यादा कठिन है

क्योंकि ज़्यादातर लोग अपने को जीता हुआ मानते हैं और हँसते हैं

हर बार कुछ छिपाते हुए लगते हैं

कोई हादसा जिसे बार-बार अनदेखा किया जाता है

उसकी एक बची हुई चीख़ जो हमेशा अनसुनी छोड़ दी जाती है।’

इस तरह हम देखते हैं कि मंगलेश डबराल के यहाँ जिस संवेदना की अभिव्यक्ति हुई है, उसकी जड़ें हमारे वक्त के यथार्थ में बहुत गहरे गयी हैं। जिस तरह ‘आदिवासी’ के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है कि “यह गहरा अरण्य उसका अध्यात्म नहीं उसका घर है”, वैसे ही उनकी कविता में निराशा का सर्वातिशायी इसरार उसका भावातिरेक नहीं, उसकी सचाई है। यह निजी क्रिस्म की निराशा नहीं है, इसीलिए उसका अंत खुला हुआ है। वह फिर से एक उम्मीद पैदा करती है अपने लिए और ‘उसे हम इस तरह बचाये रखते हैं जैसे वही सबसे बड़ी खुशी हो।’ दरअसल कवि के लिए

सही होना सबसे बड़ी सांत्वना है। इसी तर्क से निराशा में उम्मीद की गली खुलती है। मनुष्यता के जिस चरम स्तर पर हम उससे रूबरू होते हैं; वहाँ सुख और दुख, आशा और निराशा, स्वप्न और वास्तविकता के बीच कोई फ़र्क नहीं रह जाता, वे एक ही सच के अविभाज्य पहलू हैं। वहाँ एक ही कसौटी है कि आप कितने विवेकशील और ईमानदार हैं—

— जो लोग दुख को ईजाद नहीं कर पाते वे उसे देख भी नहीं पाते

क्योंकि सोचना ही देखने की पहली अनिवार्य शर्त है''

सोच की संजीदगी के इस विरल प्रस्ताव का मूल्य तब और बढ़ जाता है, जब हम अपने चारों ओर पाते हैं कि 'प्रेम की एक परत का नाम है प्रेम/अध्यात्म की खाल जैसा अध्यात्मा' ऐसे समय में अचरज नहीं कि मंगलेश डबराल को अपनी कविता रोज़ एक निर्जन में जाकर, उस निर्जन के दरवाजे पर दस्तक देने 'सरीखी कार्रवाई मालूम होती है। यों कविता के रूप में आशा और निराशा के जिस द्वन्द्व की रचना उन्होंने की है, अन्तोनियो ग्रांशी के शब्दों में कहें, तो वह 'पैसिमिज़्म ऑफ़ दि इंटेलैक्ट, ऑप्टिमिज़्म ऑफ़ दि विल, यानी बुद्धिजन्य नैराश्य और इच्छाशक्तिजन्य आशावाद' की गतिशील द्वन्द्वात्मक संहति है। गौरतलब है कि हाल ही में साहित्य अकादेमी में अपने एकल कविता-पाठ के कार्यक्रम 'कवि-संधि' में पाठकों-श्रोताओं से मुखातब होते हुए उन्होंने सिर्फ़ यह कहने का साहस नहीं किया कि 'मैं निराशा का कवि हूँ', बल्कि आत्म-स्वीकार को इस इतिहास तक ले गये कि 'मैं अपनी कविता से भी निराश हूँ' यह आत्यन्तिक आत्म-निर्ममता उनके जैसे कवि के लिए ही मुमकिन है। इसकी बुनियाद में जो सहृदयता है, उससे उन्हीं के शब्द याद आते हैं— 'जीवन के आखिरी हासिल में/एक बड़ा-सा कागज़ बचा हुआ रहता है।' कहने की ज़रूरत नहीं कि इस कागज़ पर वह स्वयं या कोई भी कवि एक नयी कविता लिख सकता है।

मंगलेश डबराल के काव्य-संसार में निराशा की वजह है प्रेम की असंभाव्यता और मनुष्यता की संकटापन्न हालत, जिसके नेपथ्य में पूँजी का अप्रत्याशित आधिपत्य है। इसे वह मानव-सभ्यता की केन्द्रीय विडम्बना की तरह चिह्नित करते हैं। माक्र्स के शब्दों को ज़रा बदलकर कहें, तो 'सार्वभौमिकता का सूरज डूब जाने से जो अंधकार उमड़ता आता है, उसमें पतंगा निजता की शमा को खोजता है।' ऐसे परिदृश्य में साधारण जन-समाज की वेधयता और संघर्ष में कवि ने अपना जो अक्स देखा है, उससे अधिक मार्मिक और प्रभावशाली हमारे समय की तस्वीर क्या होगी—

— ओ भाई बेला कुबेला सब चली गयी

सूर्य अस्त हो गया और चंद्रमा गिर पड़ा

अब तुम्हारी नाव में रात का पानी हहराता आता है

उसे उलीचते-उलीचते ही कैसे बीत रहा तुम्हारा जीवन

ओ भाई देखो यह गोलमाल दुनियादारी

इस प्रीत के भीतर क्या है भय गुलामी झकमारी
कोई नहीं जानता प्रेम किसी को मिला नहीं मोनेर मानुष
देखो सब किस तरह मरण की शरण में हैं जीवित”

मंगलेश की कविता ने प्रेम को बराबर एक सर्वोच्च मूल्य के तौर पर प्रतिष्ठित किया है। लेकिन एकान्त में नहीं, यातना के बरअक्स; क्योंकि प्रेम को नष्ट किया जाना ही यातना का सबब है और मुक्ति अगर सम्भव है, तो प्रेम की ही मार्फत। इसलिए न उन्होंने प्रेम और यातना की अलग-अलग कोटियाँ निर्मित कीं, न कला और प्रतिबद्धता की। शमशेर और मुक्तिबोध की स्मृति में उनकी एक कविता है ‘दो कवियों की कथा’, जिसमें वह कहते हैं कि ‘प्रेम के सबसे सघन कवि को प्रेम नहीं मिला’ और ‘यातना के सबसे बीहड़ कवि को यातना ही मिली।’ पर यह जानना ज़रूरी है कि ‘यातना का कवि ही प्रेम के कवि का एक सच्चा दोस्त था।’ दरअसल दोस्ती के इस आईने में दोनों तरह की अंतर्वस्तुओं की मूलभूत एकता पहचानी जा सकती है। वैसे तो यह एक रूपक ही है, मगर आज की हिन्दी कविता में मंगलेश डबराल का होना इस मानी में असाधारण है कि उनके कवि में ‘यातना का कवि’ और ‘प्रेम का कवि’ दोनों जैसे एकाकार हो गये हैं—

— यातना का कवि जल्दी ही इस संसार से चला गया
तब प्रेम के कवि ने सोचा मुझे रहना चाहिए यहाँ कुछ दिन और
अंततः प्रेम ही है यातना का प्रतिकार
अन्याय का प्रतिशोध
फिर वह अकेला झेलता रहा सारी यातना रह सका जितनी देर।’

हिन्दी विभाग, भाषा संकाय,
डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय,
सागर (म.प्र.)-४७०००३

आकलन

- डॉ. सत्यवती चौबे

मंगलेश डबराल कृत 'आवाज़ भी एक जगह है' काव्य संग्रह का यथार्थबोध

१६ मई सन् १९४८ में टिहरी गढ़वाल, उत्तरांचल में जन्मे बहुमुखी प्रतिभा के धनी, विभिन्न विधाओं में सिद्धहस्त मंगलेश डबराल जनभावना से संपृक्त रचनाकार हैं। काव्य रचना के साथ-साथ गद्य, डायरी, अनुवाद, संपादन, पत्रकारिता और पटकथा लेखन में पारंगत मंगलेश डबराल के अब तक सात काव्य संग्रह 'पहाड़ पर लालटेन', 'घर का रास्ता', 'हम जो देखते हैं', 'नए युग में शत्रु' और 'कवि ने कहा' के साथ ही दो गद्य संग्रह 'लेखक की रोटी', 'कवि का अकेलापन', एक यात्रा डायरी 'एक बार आयोवा' प्रकाशित हैं, जिसके लिए इन्हें अनेक सम्माननीय पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है।

मंगलेश डबराल की काव्य कृतियों की यह विशिष्टता है कि वे अपनी कविताओं में यथार्थ को संपूर्णता में रूपायित करने की चेष्टा करने के साथ ही उसकी जटिलता और बारीकियों की भी खोज करते हैं। उनकी कविताओं में अपने परिवेश की गहरी समझ है।

मंगलेश डबराल एक रिपोर्टर की तरह यथार्थ का ब्यौरा प्रस्तुत नहीं करते हैं बल्कि नित्य अनुभव में आनेवाले दृश्यों, बाजारों, बाग-बगीचों, शहरों, परदों, संगतकारों, स्त्रियों, अनेक मानवीय संबंधों के साथ-साथ अनेक विषय वस्तुओं आदि में अर्थ की नूतन संभावनाओं का समावेश करते हैं। वे कविता का ऐसा तानाबाना बुनते हैं कि आधुनिक जीवन के मूल्यांकन के नए मापदंडों, नए मनुष्यों की नूतन परिस्थितियों में लड़ने-भिड़ने, हारने-जीतने की नई समस्याएं संश्लिष्ट रूप में उपस्थित हो जाती हैं। वे अपनी वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों से भली-भांति वाकिफ़ हैं।

मंगलेश डबराल के चौथे काव्य संग्रह 'आवाज़ भी एक जगह है' में कुल पचास कविताओं का संकलन है, जिनमें कविताओं के आकार-प्रकार के साथ ही शैलीगत विविधता-भिन्नता भी स्पष्ट रूप से द्रष्टव्य है। इन कविताओं के संदर्भ में पुस्तक के फ्लैप लिखित है- "“आवाज़ भी एक जगह है” की कविताओं में जीवन, संवेदना और विचार की उन नई जगहों तक पहुंचने की एक

उत्कृष्ट कोशिश दिखती है जो अक्सर समय के हाशियों पर या स्थूल यथार्थ की सतहों से परे या तथाकथित मुख्यधारा से दूर एक प्रति-संसार की रचना करती रहती है। इस संसार में भाषा अपने 'शब्द वाक्य और विन्यास' के साथ पदों की तरह है जिन्हें खोलने पर मामूली कही जानेवाली वस्तुओं और घटनाओं, ओझल हो चुके दृश्यों, भुला दिए गए चेहरों और मिटे हुए नामों से हमारी मुलाकात होती है और उनकी 'एक झलक' ही जैसे 'पूरे जीवन' को अभिव्यक्त कर देती है। यह कविता हमारे दारुण समय का एक ऐसा विमर्श प्रस्तुत करती है जिसे निम्नवर्गीय या 'सर्वॉल्टन' कहा जा सकता है और आरंभ से अंत तक राजनीतिक-सांस्कृतिक सत्ता और प्रतिष्ठान का विरोध जिसका स्वभाव है। यह मानवीय विवेक की पुकार से भरी हुई एक नैतिक जगह है। यह मंगलेश डबराल की संवेदना और भाषा की सामर्थ्य भी है।

कविता में संगीत जैसे प्रभाव के संदर्भ कुछ समालोचकों ने प्रायः मंगलेश डबराल की कविता का उल्लेख किया है। इस संग्रह की कविताएं संगीत के कई अनुसुने आयामों को उजागर करती हैं जिसमें 'संगतकार', 'अमीर खाँ' 'केशव अनुरागी', 'गुणानंद पथिक', 'राग दुर्गा', 'गाता हुआ लड़का' और 'रचना प्रक्रिया' जैसी कुछ पहले से चर्चित और कुछ नई रचनाएं संगीत के भीतरी और बाहरी तनाव के साथ-साथ संगीत और समाज के संबंधों को एक नए ढंग से पहचानती हैं। हमारे समय के कुछ जात, अल्पजात संगीतकारों की कला को एक व्यापक मानवीय और राजनैतिक संदर्भ देती हुई ये रचनाएं हिंदी कविता में एक नया अनुभव है।" इस दृष्टि से उदाहरण के लिए उनकी कविता 'संगतकार' ली जा सकती है-

गायक जब अंतरे की जटिल तानों के जंगल में / खो चुका होता है
 या अपने ही सरगम को लाँघकर / चला जाता है भटकता हुआ एक अनहद में
 तब संगतकार ही स्थायी को संभाले रहता है
 जैसे समेटता हो मुख्य गायक का पीछे छूटा हुआ सामान
 जैसे उसे याद दिलाता हो उसका बचपन / जब वह नौसिखिया था
 तारसप्तक में जब बैठने लगता है उसका गला
 प्रेरणा साथ छोड़ती हुई, उत्साह अस्त होता हुआ
 आवाज़ से राख जैसा कुछ गिरता हुआ / तभी मुख्य गायक को
 ढाढ़स बँधाता / कहीं से चला आता है संगतकार का स्वर'

कवि इस कविता के माध्यम से दर्शाना चाहते हैं कि संगतकार के बिना मुख्य गायक संपूर्ण हो ही नहीं सकता। यथार्थ तो यह है कि मुख्य गायक की भाँति संगतकार को नाम, यश, पैसा कुछ भी हासिल नहीं होता, फिर भी वह बिना इन बातों की परवाह किए अपने स्वर को ऊँचा उठाने की कोशिश भी नहीं करता, इसमें उसकी विफलता नहीं बल्कि यही उसकी मनुष्यता है।

मंगलेश डबराल के यहाँ हाशिए बहुत महत्वपूर्ण हैं बल्कि हाशिए पर पड़े लोग उनके यहाँ केंद्र

में हैं। इनकी कविताएँ विकास की मुख्यधारा से दूर फेंक दिए गए इंसान की मर्यादा को पुनर्स्थापित करती हैं।

शास्त्रीय गायन भारतीय संस्कृति की अमित निशानी के साथ ही भारतीयता की पहचान है लेकिन बदलते सामाजिक परिवेश में इसकी महत्ता पर संध लग चुका है। बड़ी सिद्धत से अपनी पहचान बनानेवाला गायक अत्यंत ईमानदारी से अपने घर-घराने के साथ-साथ संगीत का गुरुत्व थामे रखना चाहता है लेकिन उसका अपना जीवन कितनी कठिनाइयों-संघर्षों से भरा होता है, वह कितनी सामाजिक चुनौतियों का सामना करता है इस तथ्य की पुष्टि करती हैं मंगलेश डबराल की कविताएँ ‘अमीर खों’, ‘केशव अनुरागी’, ‘गाता हुआ लड़का’ और ‘रचना प्रक्रिया’। इसकी एक झलक कविता ‘अमीर खों’ की -

“संगीत तुम्हारा एकमात्र काम था / हालांकि तुम्हें दे दिए गए थे दूसरे कई काम
जो संगीत के साथ थे बेसुर-बेताल
तुम्हें हिसाब रखना नहीं आया पैसे पता नहीं कहाँ खोते रहे
महान अमूर्तनों का समय खत्म हुआ, आया व्यापार का युग
पार्श्व से सुनाई देते रहे विवादी स्वर/ समझ में न आनेवाला गायन। आवाज़ की सीमाएँ
हिंदू संगीत मुस्लिम संगीत/ घर घराना परंपरा कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा
लेकिन तुम गाते रहे बागेश्री पूरिया चंद्रकौंस
जग सम्मोहिनी अहीर भैरव कोमल ऋषभ आसावरी
और उत्तर दक्षिण हिंदी फारसी ईश्वर अल्लाह सबको एक करती
जान और गुण माँगती हंसध्वनि।

इतिहादे मियाने मनो तो नेस्त मियाने मनो तो अमीर खुखरो की फारसी रचना है जिसका अर्थ है : तुम और मैं इस तरह एक है कि तुम्हारे और मेरे बीच कोई बीच नहीं है।

कविता के अंत में कवि ने दर्शाया है कि किस कदर शास्त्रीय संगीत गायक को न जाने कितनी परीक्षाओं, चुनौतियों यहां तक कि अपने वजूद का सामना करना पड़ता है। कुछ इसी भाव से उत्प्रेरित कविता ‘केशव अनुरागी’ है। कविता की एक बानगी-

“गढ़वाल के गीतों को जिसने पहुँचाया शास्त्रीय आयानों तक
उसकी प्रतिभा के सम्मुख सब चमत्कृत
अछूत के घर कैसे जन्मा यह संगीत का पंडित
और जब वह थोड़ी पी लेता तो
ढोल की तालों से खेलता गेंद की तरह
कहता सुनिए यह बादलों का गर्जन और यह रही

पानी की पहली कोमल बूँद की फुहार
यह झमाझम बारिश यह बहने लगी नदी
यह बना एक सागर विराट प्रकृति गुंजायमान
लेकिन मैं हूँ एक अछूत कौन मुझे कहे कलाकार
मुझे ही करना होगा आजीवन पायलागन महाराज जय हो सरकार

ढोल बजानेवाले पर आधारित यह कविता एक केशव अनुरागी के समान अनेक कलाकारों को उसका आत्म सम्मान, सामाजिक न्याय नहीं मिल पाने की कसक व टीस को व्यक्त करती है। ढोल बजाना उत्तराखंड में एक विशेष प्रकार के निम्न जाति के लोगों का पेशा है।

यहाँ यह ढोल जीवन में जन्म से लेकर मृत्यु तक के सभी शुभ-अशुभ भले-बुरे अवसरों पर अनेक-अनेक तालों-सुरों आरोह-अवरोह के साथ बजा कर अपनी भावनाओं को व्यक्त किया जाता है। परंतु विडंबना तो यह है कि इसे बजानेवालों को अछूत समझा कहा जाता है। कोई इस कार्य को सम्मान की दृष्टि से नहीं देखता, कोई उनसे यह ढोल बजाने की कला सीख कर इसे प्रोत्साहन देना नहीं चाहता। यही कारण है कि उत्तराखंड से यह ढोल बजाने की परंपरा धीरे-धीरे समाप्ति की कगार पर है। ढोल बजानेवाले भी नहीं चाहते कि उनके बच्चे उनकी तरह अपमान सहकर सामाजिक भेदभाव का शिकार बनें। अतः वे उन्हें छोटी-मोटी नौकरी करने को अधिक बढ़ावा देते हैं। ढोल बाज की इस बिडंबना को कवि मंगलेश डबराल ने अत्यंत मार्मिकता और सूक्ष्मता से उकेरा है, साथ ही इस कला की कलाकृति को बड़ी गहराई और विविधता से दर्शाया है। कवि की यह कविता इस तथ्य को प्रमाणित करती है कि उनका संगीत से गहरा लगाव है। कविता की संगीतहीन दुनिया में मंगलेश की कविता का अपना एक संगीत है, अपनी एक सिंफनी है। यही 'सिंफनी' उनकी अगली कविता 'गुणानंद पथिक' में भी दिखाई पड़ती है। रामचरितमानस का गढ़वाली में अनुवाद कर रामलीला और कृष्णलीला की परंपरा शुरू करनेवाले लोकसंगीत के गहरे साधक, लोक कवि, लोक कलाकार स्वतंत्रता सैनानी और समाज सुधारक गुणानंद पथिक के व्यक्तित्व से प्रभावित कवि मंगलेश डबराल ने अपनी इस कविता में उनके जीवन संघर्ष को वाणी दी है। इस कविता में कवि ने दर्शाया है कि पहाड़ी जनमानस में सामंती प्रथा, राजा के अन्याय-अत्याचार-शोषण-वर्ग संघर्ष के प्रति जन-जागृति ले आने तथा वहाँ की जनता को सजग-जागरूक बनाने के लिए गुणानंद पथिक ने अत्यंत सरल-सहज जनवादी लोकगीत बनाकर उसे पुस्तिकाओं के रूप में गाँव-गाँव, घर-घर में बाँटा। अपना पुराना हारमोनियम गले में लटकाकर कंधे पर टंगे झोले से स्वरचित पुस्तिकाओं को कम से कम मूल्य में बेचा। अपने लिखे गीतों को गा-गाकर व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष के लिए आम जनता को तैयार किया। इसकी एक बानगी-

“गुणानंद पथिक गाते थे पहाड़ को बदलने का गीत
गाँव-गाँव की दीदियों-भुलियों से कहते जागो जल्दी जाओ
तुमसे ही जागेंगे निठल्ले पहाड़ / यह बात लिख लो यह गीत सुन लो

क्यों गरीब के घर कंटीली घास की भी किल्लत है
कैसे अमीर के घर सजे हैं रात-दिन पकवान
गुणानंद पथिक को सुनते लोग टॉफी-लेमनजूस भूलकर / खरीद लेते गीतों की किताब
उसे पढ़ते हुए जाते बस में बैठ घर की ओर।”

जीवन के प्रति आस्थावान, मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित गुणानंद पथिक यह कदापि नहीं चाहते थे कि पूंजीवादी सभ्यता अपनी अति महत्वाकांक्षी स्वार्थी अवसरवादिता को माध्यम बनाकर पहाड़ी सभ्यता संस्कृति, वहाँ की लोक संस्कृति-रहन-सहन-खान-पान, वहाँ के लोक संगीत, लोक साहित्य को प्रभावित करे कि सामंतवाद के पश्चात पूंजीवादियों का प्रकोप बढ़ता जाए, जनमानस को अंधकार में रखकर पहाड़ी संस्कृति को क्षति पहुँचे। परंतु आगे क्या हुआ उसकी एक बानगी-

“गुणानंद पथिक जान नहीं पाए उनके जीते जी बदल रहा था कुछ
या बदलते-बदलते रह गया था कुछ / कई तरह के नए बाजे बजे पहाड़ में
पैसे की आवाज़ आने लगी जगह-जगह सुनाई दिया व्यवसाय का हॉर्न
गीतों की किताबों से ज़्यादा बड़े हो गए पचास पैसे”

इस प्रकार कवि मंगलेश डबराल ने लोक कलाकार गुणानंद पथिक की आत्मपीड़ा को अत्यंत सहजता एवं संवेदनशीलता से रूपायित किया है।

कवि ने दिल्ली की उमस एवं भीड़-भाड़ से भरी बस में बारह तेरह वर्ष के एक लड़के को हारमोनियम बजाकर मीठा गीत सुनाते हुए अपनी कविता ‘गाता हुआ लड़का’ में दर्शाया है जिसकी एवज में उसकी छोटी बहन मुसाफिरों से घूम-घूम कर पैसा माँगती है। कोई उन्हें हिकारत भरी दृष्टि से देखता है तो कोई उन पर तरस खाकर कुछ पैसे दे देता है। ऐसा वे दोनों किसी शौक से नहीं करते, बल्कि दो जून की रोटी खातिर गीत गाते बजाते और माँगते हैं। कवि इस गायक बच्चे की त्रासदी को इस देश में कलाकार की नियति मानता है और यथार्थता को सामने लाने का प्रयत्न करता है-

“वह गया हुआ ओझल / रस्ते भर रही मेरे साथ वह मीठी धुन
जिसमें उम्मीदें थीं और खुशी थी / इस तरह महज़ एक रूप में मिली मुझे कविता
घर आकर मैंने वह धुन गायी मन में और रो पड़ा
कितना रहा अकारथ मेरा होना / कैसा विचित्र रात में यह रोना।’
मंगलेश डबराल की रचनाएँ अपने समाज से गहरा सरोकार रखती हैं।

भूमंडलीकरण और उदारीकरण के इस दौर में जहाँ इनकी रचनाओं में मध्यमवर्गीय जीवन में व्याप्त विभिन्न समस्याओं का चित्रण हुआ है, तो वहीं सर्वहारा वर्ग, अतिनिम्नवर्गीय जीवन में व्याप्त शोषण, अन्याय, अत्याचार, करुणा, दुख संत्रास की भी उन्हें चिंता है। जहाँ मानवीय तथा

पारिवारिक रिश्तों की प्रगाढ़ आत्मीयता पर चर्चा हुई है तो वहीं जीवन के एकांकीपन, घुटन का भी मनोविश्लेषणात्मक विश्लेषण हुआ है, यदि जीवन संघर्षों का यथार्थ चित्रण है तो वहीं आशावादी स्वर भी मुखरित हुआ है। इन तमाम विशिष्टताओं को स्वयं में समेटे हुए 'आवाज भी एक जगह है' काव्य संग्रह में हाशिए पर खड़े समाज के साथ-साथ व्यवस्था के प्रति विरोध की भावना भी मौजूद हैं। समाज के प्रति अपनी प्रतिबद्धता दर्शाते हुए कवि अपनी कविता 'अपनी छायाएँ' में कहता है-

“उसकी कविताओं में उनकी आवाज़ें हैं / जिनकी कोई आवाज़ नहीं थी
उसकी कविताएँ मचाती रहीं एक महासंघर्ष का कोहराम
सर पर आसमान उठाए हुए वे चलती ही रहीं
अब वह सुन नहीं पाता बाहरी दुनिया की आवाज़
उसकी कविता के लोग थके हारे आधे रास्ते में गिरे हुए
उसके भीतर पानी की तरह हलचल करते रहते हैं”

'आवाज भी एक जगह है' काव्य संग्रह में स्त्रियों पर आधारित अनेक कविताएँ हैं मसलन 'स्त्रियाँ', 'तारे के प्रकाश की तरह', 'तुम्हारे भीतर' तथा 'लड़की और अंधा आदमी'।

इतालवी फिल्मकार फेदेरीको फेल्लिनी की फिल्मों देखने के पश्चात रचित कविता 'स्त्रियाँ' वर्तमान समय की एक ऐसी क्रूरता को हमारे समक्ष उद्घाटित करती हैं जिसे पढ़कर हृदय काँप उठता है। इस कविता के अनुसार स्त्री, स्त्री नहीं है अपितु उपभोग करने की कोई वस्तु है जिसके समर्पण का पुरुष प्रधान समाज हमेशा से मखौल उड़ाता आ रहा है। वह पुरुष प्रधान समाज, जो हमेशा से स्त्री के प्रेम, त्याग, समर्पण, दुख, संघर्ष से अनजान बने रहने का पाखंड करता है उसे कवि ने आईना दिखाने का प्रयास किया है। इस कविता में कवि ने दर्शाने का प्रयास किया है कि जीवन में बार-बार छली जाने के बावजूद औरत प्रेम से बसा हुआ घर ही चाहती है-

“एक आँख से हँसती एक से रोती हुई / वह फिर से आ पहुँचती है पुरुष के सामने
जैसे उसका कुछ न छीना गया हो / जैसे वह उसी तरह करती आ रही हो प्रेम”

उनकी मार्मिक वेदना को समझते हुए कवि उनके अस्तित्व व अस्मिता की ओर भी इंगित करता है-

“प्रेम करने के अपराध में
उन्हें अच्छी तरह भुला दिया जा चुका होता है
तब कहीं से आती है उनके होने की आवाज
उनका कोई प्रिय गीत अचानक सुनाई दे जाता है
वे धीमी कोमल आवाज़ में कुछ कहती दिखती हैं”

इसी प्रकार मंगलेश डबराल 'तारे के प्रकाश की तरह' कविता में स्त्री देह को लेकर घर की

परिकल्पना किस प्रकार से करते हैं उसकी एक बानगी-

“स्त्री की देह उसका घर है
वह बिखरी हुई चीज़ों को सहेजती है
तस्वीरों और दीवारों की धूल साफ करती है
कपड़े तहाकर रख देती है
वह अपने भीतर थामे हुए रहती है टूटते पहाड़ों
बिफरती नदियों और ढहते सौर मंडलों को
वह कुछ कहती है या सर झुकाए हँसती है
या उसके आँसू कुछ देर फर्श पर चमकते दिखते हैं
ये सब उदाहरण हैं कि वह किस तरह बचाने में जुटी है।”

‘तारे के प्रकाश की तरह’ टिमटिमाती स्त्री आजीवन अपने अस्तित्व और अस्मिता को बचाए रखने हेतु प्रयासरत रहती है। कुछ यही भाव दर्शाती है कवि की अगली कविता ‘तुम्हारे भीतर’। जिसमें कवि ने बड़ी खूबसूरती से दर्शाया है कि पुरुष का अस्तित्व ही स्त्री के कारण है-

“एक स्त्री के कारण तुम्हारा रास्ता अंधेरे में नहीं रहा
रोशनी दिखी इधर-उधर
एक स्त्री के कारण एक स्त्री
बची रही तुम्हारे भीतर”

कवि ने इस कविता में दर्शाया है कि पुरुष यदि बुलंदियों के शिखर चूम रहा है तो उसके पीछे भी स्त्री है जिसके बिना उसका जीवन निरव, नीरस संवेदनहीन है क्योंकि स्त्री ही पुरुष की ताकत है।

कवि मंगलेश डबराल ने अपने जीवन में अनेक संघर्षों का सामना किया, कभी हार नहीं मानी। उनमें जीवन के प्रति जो आस्था है, ललक है उसने उनकी कविता को संप्रेष्य बनाया है। उनके अनुभवों ने उन्हें सहजता प्रदान की है। जीवन के दुखों से तंग आकर पलायन का रास्ता उन्हें स्वीकार नहीं है। इस दुख से कहीं करुणा, कहीं विद्रोह, कहीं जीवन के लिए कोमलता का ‘स्पेस’ चुनते हुए वे अपनी कविता ‘दुख’ में लिखते हैं-

“मैं धारण करता हूँ वे शब्द
जो चेखव की कहानी के साईस ने अपने घोड़े से कहे थे
मैं दुख हूँ / देर रात को धीरे-धीरे लौटता हूँ / मुझमें सुख की स्मृतियाँ हैं
मैं बना हूँ रसोईघरों में इकट्ठा हुए / आँसुओं के नमक से।”

कवि के दुख में एक धीमी कंपती हुई जो रोशनी है, वह उम्मीद है और वह उम्मीद ही मंगलेश

डबराल को आस्थान बनाती है, इसलिए कवि को इन दुखों के अंबार में उम्मीदों की आस्थाएँ दिखाई देती हैं। मंगलेश डबराल एक ऐसे कवि हैं जो पागलों, कबाड़ियों, गीत गाकर पैसे माँगनेवालों से लेकर छुपम-छुपाई खेलने वालों और मंगल ग्रह पर जीवन तलाशने वालों के साथ-साथ रसोई घर में गिरे गिलास की आवाज में से भी एक बड़ा विज्ञान, एक नई दृष्टि रच लेते हैं और अभिशप्त किस्म के चरित्रों, वंचितों, उपेक्षितों, अलक्षित रहनेवाले अभागों के प्रतिसंवेदना जगाते हैं जैसे 'पागलों का एक वर्णन' कविता का एक उदाहरण-

“तरह-तरह के इशारे करते पागलों के बीच से
अकसर गुजरते हैं स्वस्थ मस्तिष्क के लोग
उनकी आँखों में थोड़ा-सा झाँककर
एकाएक सहमते हुए आगे बढ़ जाते हैं
जैसे झटक देते हों अपने जीवन का कोई अंश
अपना कोई क्रोध, कोई प्रेम, कोई विरोध
अपनी ही कोई आग
जो उनसे अलग होकर अब भटकती है
व्यस्त चौराहों और नुक्कड़ों पर
कपड़े फाड़े बाल बिखराए सूखी रोटियाँ संभालो”

इस कविता के माध्यम से कवि यह दर्शाना चाहते हैं कि हमारी व्यवस्था स्वस्थ मानसिकता वाले व्यक्ति को भी पागल बना देती है। पूंजीवादी व्यवस्था में तमाम तरह से अनेक तनावों में जकड़ा आम आदमी अपने ही देश में अपने ही लोगों द्वारा ठगा हुआ, सताया हुआ अपनी विशिष्टता का आभास करता है। कोई व्यवस्था के कारण पागल बना है, तो कोई नियमों को तोड़कर पागल बना है। या इसे यूँ भी कह सकते हैं कि पागल है इसीलिए नियमों को तोड़ रहा है। लेकिन इतिहास गवाह है कि जब-जब नियम टूटे हैं तब तब एक नई कविता का सृजन हुआ है, समाज में, राष्ट्र में क्रांति आई है, परिवर्तन हुआ है। कवि उसी परिवर्तन का अभिलाषी है। इस कविता में कुछ और पंक्तियाँ हैं-

“पुरानी दोस्ती का हवाला देते हुए बैठ जाते हो
कहते हुए हमें कुछ शरण दो
हम एक राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय षडयंत्र के शिकार हैं”

यहाँ मंगलेश यह बताना चाहते हैं कि भूमंडलीकरण के मुक्त अर्थव्यवस्था और उपभोक्तावाद के इस दौर में विश्व का सारा ध्यान, पूरा बल अंतरराष्ट्रीय व्यापार पर है जिसने पूरी दुनिया को बाजार बना कर रख दिया है, जिसमें नौकरी में वृद्धि नहीं है परंतु अंतरराष्ट्रीय व्यापार से वित्तीय अर्थव्यवस्था में खूब वृद्धि है और ऐसा राष्ट्रीय षडयंत्रों के बिना कदापि संभव नहीं है। इस व्यवस्था ने भी मनुष्य समीचीन

को कम पागल नहीं बनाया है।

मंगलेश डबराल के अनुसार प्रकृति की तरह बाजार भी एक परिवर्तनशील जगह है जिसने उपभोक्तावादी संस्कृति को पुष्टि प्रदान की है। विज्ञापनों के चकाचौंध में जहाँ विवेक का सहज प्रकाश डूबता जा रहा है वहीं बाजार रोशनी से जगमगा उठता है। आज चमत्कारों का उत्पादन सबसे बड़ा व्यापार है जो कवि के समक्ष अनेक चुनौतियाँ खड़ी करता है यथा-

“प्रकृति की तरह बाज़ार भी परिवर्तनशील है
उसका भूगर्भ भी कभी इधर-उधर करवटें बदलता है
भूकंप के झटके रोज ही यहाँ आते हैं
लेकिन उन्हें महसूस नहीं किया जाता।”

इन बाजारों ने हमारे समाज में लूटपाट-लालच भय, आपसी द्वेष कलह, प्रतिस्पर्धा, आपाधापी की स्थिति उत्पन्न कर दी है, हलचल मचाकर रख दी है जिसके पागलपन की कोई सीमा नहीं है तभी तो कवि ‘पागलों का एक वर्णन’ में लिखता है-

“पागल होने का कोई नियम नहीं है।
इसलिए तमाम पागल अपने अद्वितीय तरीके से पागल हैं।”
“वे भूल चुके होते हैं कि पागल होने से / बचे रहने के कोई नियम हैं।”

कवि बाजारवाद, उपभोक्तावाद के शोषण अत्याचार से इस दुनिया को बचाना चाहते हैं।

मंगलेश डबराल की कविता ‘ज्योतिष’ एक अद्वितीय कविता है जिसमें कवि जनमानस को भाग्यवाद या नियतिवादी दृष्टि को छोड़कर अपनी भुजाओं पर भरोसा रखकर संघर्षशील, श्रमशील बनने पर पूरा जोर देता है। विज्ञान के इस युग में ज्योतिष के भरोसे बैठकर जीवन के लक्ष्य तक कदापि नहीं पहुँचा जा सकता है क्योंकि यहाँ भी आस्था के नाम पर ठगों का पूरा बाजार बना हुआ है जो अमीर धनवान लोगों को कुछ इस प्रकार बताता है-

“संपन्न लोगों के सितारे अब हैं और भी बुलंद
भाग्य में है वैभव पदोन्नति राजसुख सुंदर चितबन
उनकी अंगुलियों में माणिक्य पुखराज नीलम
आधुनिक वेशभूषा के भीतर बढ़ते तरह-तरह के ताबीज”
तो वहीं वह गरीब-दीन दुखियों को इस प्रकार बताता है-
“लग्नेश की टेढ़ी निगाह से देखते भाग्येश की
कृपादृष्टि का मुँह ताकते
उच्च राशि में स्थित अपने निम्नग्रह को कोसते

जीवन की टेढ़ी चाल को बतलाते शनि की चाल
एक क्रूर मंगल की छाया में सो जाते रोज”

मंगलेश धूर्त, बेईमान ज्योतिषियों की पोल खोलते हुए यह बताना चाहते हैं कि वर्तमान युग में ज्योतिषी अमीर-गरीब दोनों को उम्मीदों की जहाज पर बैठाकर, अमीर को शुभ तथा गरीब की कमियों को गिनाकर दोनों को लूटता है और स्वयं उनके पैसों पर ऐश करता है।

मानवीय जीवन और संघर्ष का अटूट नाता है और जीवन के तमाम संघर्षों पर चिंतन करना मंगलेश डबराल की विशिष्टता है। जितनी सूक्ष्मता से वे वर्तमान विसंगतियों को उजागर करते हैं उतना ही गहराई से वे इतिहास-बोध की परख भी रखते हैं उसकी एक बानगी हम उनकी कविता ‘दूसरे लोग’ में देख सकते हैं-

“सभ्यता का गुणगान करनेवालों / तुम अगर सभ्य नहीं हो
तो तुम्हारी सभ्यता का कद तुमसे बड़ा नहीं है / एक लंबी शर्म से ज्यादा कुछ नहीं है इतिहास”
इस कविता में भी कवि डबराल जनमानस को संघर्षशील बने रहने की प्रेरणा देते हैं तो वहीं शोषकों की खबर भी लेते हैं।

मंगलेश डबराल सच्चे अर्थ में सामाजिक और राजनीतिक चेतना के कवि हैं। सांप्रदायिक दंगे फसाद का विरोध करते हुए कवि अपनी कविता ‘६ दिसंबर’ के माध्यम से बताना चाहते हैं कि अपने स्वार्थ के लिए मजहब के नाम पर हिंसात्मक प्रवृत्ति अख्तियार करना इंसानियत के नाम पर कलंक है। प्रतिशोध के लिए निर्ममता, निर्दयता उप उतारू होना, विध्वंसात्मक रुख अपनाना समाज हित में कदापि नहीं है। दो मजहबों को आपस में लड़ा-भिड़ा कर महज राजनीतिक रोटियाँ सेंकी जा रही हैं। इस बात को जनमानस को समझना चाहिए। इस कविता की एक झलक -

“रसोईघर में एक गिलास आवाज़ करता हुआ गिरता है
किसी बड़ी खामोशी में डूबने के लिए
दीवार पर पुराना तस्वीरों वाला कैलेंडर
जिसे फाड़कर फेंक दिया गया”

यहाँ रसोई घर में ‘गिलास का गिरना’ प्रतिक्रमक रूप से ६ दिसंबर का आवेग है। गिलास गिरने के पश्चात पहले कुछ पल आवाज होती है फिर उसके कुछ देर बाद एक प्रकार का सन्नाटा, लेकिन इस सन्नाटे के पीछे एक इतिहास है। उस इतिहास का भयानक शोर मंदिरों, मस्जिदों

गिरिजाघरों जैसे धार्मिक स्थलों के टूटने तथा किलो, महलों के ध्वस्त होने, बस्तियों के जलने का शोर फिर सन्नाटा। इस प्रकार इस कविता में कवि ने देशकाल की सीमाएँ पार कर जो घट चुका है या घट सकता है उसको मूर्तरूप देने का प्रयत्न किया है।

कवि मंगलेश डबराल अन्याय, शोषण, हिंसा और अत्याचार के विरुद्ध अत्यंत निडरता से आवाज़ उठाते हैं जिनमें प्रतिरोध का स्वर इस तरह मुखर हो उठता है कि उसकी ध्वनि चारों ओर

गूँज उठती है। सामाजिक विषमता, वर्ग-भेद, धुआँखूत पर प्रकाश डालती इनकी कविता 'शानदार बगीचा' में ये लिखते हैं-

“मैं एक फूल तोड़कर सूँघता हूँ
और एक बादशाह की तस्वीर में बदल जाता हूँ
एक फूल मेरे पैर के नीचे आकर कुचल जाता है
तब मैं दिखता हूँ एक गरीब की सूरत
जिसे बादशाह के बगीचे में टहलने की मनाही है
अनंतकाल से”

कवि यहाँ दर्शाना चाहते हैं कि प्रकृति ने मनुष्य जाति के प्रति कोई भेदभाव नहीं किया, पर्वत, पहाड़, नदियों, फूलों, फलों ने सबके साथ समान व्यवहार किया परंतु मनुष्य ने सबके साथ हमेशा अन्याय किया, अनंतकाल से मनुष्य ने ही मनुष्य का शोषण, दोहन, अनैतिक आचरण, अन्याय, अत्याचार किया। यह सीख तो मनुष्य प्रकृति से भी सिख सकता है, परंतु वह ऐसा कतई नहीं करता, बल्कि उनका भी बँटवारा कर देता है।

मंगलेश डबराल द्वारा रचित कविता 'मरणोपरांत कवि' गजानन माधव 'मुक्तिबोध' के कवि-कर्म के साथ-साथ उनके जीवन संघर्ष को भी परिभाषित करती है। कवि डबराल ने इस कविता में अत्यंत सहजता और सजीवता से बखूबी दर्शाया है कि मुक्तिबोध एक ऐसे कवि थे जिन्हें मरणोपरांत प्रसिद्धि मिली, ज्ञानपीठ ने उनके लिखे साहित्य को प्रकाशित करवाया, तब से लेकर आज तक वे चर्चा और शोध के विषय बने हुए हैं, जबकि अपने जीवनकाल में उन्हें अनेक विवादों, संघर्षों झंझवातों का सामना करना पड़ा। इस कविता की कुछ पंक्तियाँ-

“वही था हमारे समय का सच्चा एक विरोधी स्वर
व्यापक रूप से असहमत और अंततः असंतुष्ट
सभी जानते है उसकी बातों को पचाना अकसर कितना कठिन था
और उस आकस्मिक अंत समय में भी लगता था
वह लिखना कभी नहीं करेगा बंद”

अपनी 'अनुपस्थिति' कविता में कवि ने पहाड़ी क्षेत्र में पर्यावरण में आए बदलाव की बात कहते हैं- उसकी एक झलक -

“बाद में जब मैं बड़ा हुआ
देखा बर्फ को पिघलते हुए
कुछ देर चमकता रहा पानी
अंततः उसे उड़ा दिया धूप ने”

कवि मंगलेश की कविता 'लौटा मैं इस बड़े शहर में' एक अतिसंवेदनशील और हृदयस्पर्शी कविता है जिसमें कवि ने अपनी अनुभूतियाँ साँझा करते हुए लिखा है कि बड़े-बड़े शहरों में रहनेवाले लोगों की उनकी समाज में उतनी कद्र नहीं होती है जबकि वही लोग छोटे-छोटे शहरों में लोगों की नजरों में भगवान के समान दुख-हारन बन जाते हैं तो इस बाबत कवि कहता है-

“जल्दी ही कुछ करने अगली बार
दवा लाने का आश्वासन देकर
लौटा मैं इस बड़े शहर में
फिर से नीचा करने सर”

‘आवाज भी एक जगह है’ काव्य संग्रह में संकलित कविता ‘वापसी’, ‘चुंबन’, ‘ली पाइ’ और ‘धूल’ को कविता के बजाए गद्यात्मक लघु लेख या अनुच्छेद कहना अधिक उचित लगता है क्योंकि इन चारों को बिल्कुल अलग शैली में अर्थात् गद्य की शैली में लिखा गया है।

कवि द्वारा विरचित ‘छुपम-छुपाई’ कविता भी अत्यंत जीवंत है जिसमें कवि बच्चों के छुपम छुपाई खेल के माध्यम से बहुत गहरी बात कहते हैं-

“यह एक संकेत है कि जिसे तुम आसान समझते हो
वह दरअसल काफी कठिन है
और आवाज भी एक जगह है जहाँ छिपा जा सकता है
अपने कुतूहल कल्पना और सहजबुद्धि के सहारे”
अन्यत्र एक स्थान पर-
“मैं कहता हूँ देखा नहीं
क्योंकि मैं छिपाए रहता हूँ खुद को
अपनी खाल के कल्ब में धूल होते कागजों में, खामोशी में
बचता चला आया हूँ यहाँ तक अपमान और अन्याय से
छिपा दूर-दूर तक कि यह भाँपना कठिन हो कहाँ छिपा हूँ
बहुत दिन हुए खोज नहीं पाया कुछ
गया नहीं किसी अनजान दुर्गम जगह की ओर”

इस कविता के माध्यम से कवि ने प्रतीकात्मक रूप से यह बताने का प्रयास किया है कि ‘अच्छी तरह छिप गया हूँ खोजे जाने के लिए तैयार’, यह संकेत यँ तो आसान लगता है परंतु यह उतना ही कठिन है क्योंकि मनुष्य अपने कुतूहल, कल्पना और सहज बुद्धि के सहारे कहीं भी स्वयं को छिपा सकता है कि भाँपना कठिन हो जाए कि कौन कहाँ छुपा है। अपने आपको अनेक विषम परिस्थितियों से बचाए रखने के लिए हर आदमी स्वयं को छिपाना चाहता है और स्वयं को छिपाने

के लिए आवाज़ उठानेवाले की तरफ शक की सुई नहीं घूमती है। वह आवाज़ उठाकर सबकी निगाहों से स्वयं को बचाकर छिपाकर रहता है। इस प्रकार कवि की यह कविता भी रहस्य और यथार्थ को समेटे अपना गूढ़ अर्थ व्याख्यायित करती है।

अंततोगत्वा निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मंगलेश डबराल की 'आवाज़ भी एक जगह है' काव्य-संग्रह में निहित कविताएँ अपने से नहीं, बल्कि अपनों से की गई बातचीत है, इसीलिए यहाँ आपबीती, जगबीती बन जाती है। हमने देखा कि इनकी रचनाओं में किस प्रकार अनदेखे किए गए दृश्य देखे जाते हैं, अनसुनी आवाज़ों को सुना जाता है। यही इनकी कविताओं का जीवन है जहाँ मामूली लोगों के गैरमामूली जीवन को बयान करनेवाली एक स्पष्ट पक्षधरता और गलत का प्रतिरोध मौजूद है। मंगलेश जीवन की तमाम विसंगतियों, विकृतियों, विषमताओं, विरोधों, संकटों और समस्याओं से सीधा मुकाबला करने वाले कवि हैं। वे पलायन की प्रवृत्ति से कहीं भी आक्रांत नहीं हैं। दुनिया में ज़िंदा रहने के लिए फूल पत्तों की कोमलता ही नहीं, ढूँठ की कठोरता भी चाहिए, तभी दुनिया के साथ सामंजस्य बैठाया जा सकता है, संघर्ष किया जा सकता है क्योंकि जीवन का दूसरा नाम ही संघर्ष है जिसके बिना परिवर्तन कदापि संभव नहीं है।

कवि का मानना है कि प्रतिकूल परिस्थितियों में रहकर, विपरीत परिस्थितियों का सामना करते हुए जीवन के संघर्षों से लड़ते हुए ही खुशियों की तलाश करनी होगी। मंगलेश डबराल के जीवन संघर्ष और उनकी अदम्य जिजीविषा को देखते हुए मिथिलेश श्रीवास्तव के शब्दों में "मैंने निराशा के क्षणों में मंगलेश डबराल के भीतर एक और बेहतर मनुष्य का जन्म लेते और विकसित होते पाया। एक ऐसे बेचैन मनुष्य को पाया जो एक साथ अपने समय में देश और पंचित उपेक्षित लोगों की खातिर संघर्ष करने के लिए हमेशा तत्पर है। वे अंतर्मुखी हैं लेकिन उस अंतर्मुखता के नीचे एक ऐसा रचनात्मक तूफान चलता हुआ मैंने पाया जो दुनिया की सारी अमानवीयता और क्रूरता को धो-पोंछ उड़ा ले जाना चाहते हैं।" ('मनुष्यता के पक्ष में मिथिलेश श्रीवास्तव का लेखन'- न्यूजब्रेक-२००१, १४ जनवरी साप्ताहिक, पृष्ठ संख्या ४८)

अंततः धरातल से जुड़े कवि मंगलेश डबराल की इस काव्य संग्रह की कविताएँ यथार्थ हैं, मौलिक हैं, सहज हैं और जनजीवन से जुड़ी हुई हैं। कविता लेखन में पांडित्य प्रदर्शन नहीं है, भारी भरकम संश्लिष्ट शब्द भंडार नहीं है बल्कि हृदय का उद्गार है। सभी कविताएँ संवेदनशील और हृदयस्पर्शी हैं। इस बात से कदापि इंकार नहीं किया जा सकता है।

हिंदी विभागाध्यक्ष,
विल्सन कॉलेज, मुंबई

आकलन

● डॉ. प्रवीण चंद्र बिष्ट

सामाजिक अभिव्यक्ति का प्रामाणिक दस्तावेज़ 'पहाड़ पर लालटेन'

मंगलेश डबराल अपने समकालीन जनवादी कवियों से कई अर्थों में विशिष्ट स्थान रखते हैं। इनकी कविताएँ समसामयिक जन-जीवन का प्रतिनिधित्व करती दिखाई देती हैं। इनके द्वारा उठाये गए विषय किसी न किसी रूप में जन सामान्य से संबद्ध हैं। इनमें कविताओं में जहाँ एक ओर बचपन है, छूटी जगहों की यादें हैं, अंधेरे उजालों में खुलती खिड़कियाँ हैं, आस-पास घिर आई रातें हैं, सम्राज्ञी का एक विशिष्ट माया लोक है तो दूसरी ओर सड़कें, टहनियाँ, पानी, पर्वत और फूल तथा रोशनी आदि प्रेरणा के स्रोत बनकर आए हैं। इनकी कविताओं में विकट संघर्ष से जूझता व्यक्ति टूटता नहीं है बल्कि उससे उबरने की क्षमता भी रखता है। इनकी कविताओं के पात्रों में जहाँ एक ओर पलायन के कारण अपनों से बिलुड़ने की छटपटाहट है वहीं दूसरी ओर रम्य प्राकृतिक परिवेश को भुला पाना असंभव सा जान पड़ता है। मंगलेश डबराल की कविताओं के संदर्भ में पंकज सिंह का कहना है कि पहाड़ों के साफ पानी जैसी पारदर्शिता इन कविताओं का गुण है जिसके भीतर और आरपार हलचल करते हुए जीवन को हम साफ-साफ देख सकते हैं।

कवि ने 'वसंत' नामक कविता में पहाड़ों के जन-जीवन और वहाँ के प्राकृतिक परिवेश को अभिव्यक्त किया है। कवि कहता है कि वसंत के आने पर वहाँ के पर्वत शृंखलाओं पर एक बार फिर से खुशियों की लहर दौड़ पड़ती है। वे फिर से सजीव हो उठते हैं। घास बढ़ने लगती है। हवा इस तरह बहती है कि मानो उन पर्वतीय ढलानों से कोई मुसाफिर गुजर रहा हो। वसंत के आने पर पत्थरों से दबी कुचली घास भी अपनी पूरी सामर्थ्य के साथ उसके चारों ओर से झाँकते हुए अपने होने की उपस्थिति दर्ज करा देती है। दरारों को ढकी हुई पिछले साल की बर्फ पिघलकर नदियों से आर्लिंगनबद्ध होती है। दूसरे अर्थों में यह कविता आजादी मिलने के उपरांत सरकार से यह अपेक्षा रखती है कि वह पहाड़ी इलाकों के विकास को केन्द्र में रखकर काम करेगी जिससे पहाड़ी क्षेत्रों के लोगों के जन-जीवन में भी परिवर्तन देखने को मिलेगा, उनके जीवन स्तर में सुधार दिखाई देगा तथा वहाँ से पलायन का सिलसिला भी समाप्त हो जाएगा। जिसके लिए वे लम्बे समय से इंतजार कर

रहे हैं। अब वहाँ का व्यक्ति सोचने लगता है—

— इन ढलानों पर वसंत
आयेगा हमारी स्मृति में
ठंड से मरी हुई इच्छाओं को फिर से जीवित करता।
(पहाड़ पर लालटेन पेज-९)

‘आवाजें’ कविता में पर्वतीय क्षेत्र के संघर्षमय जीवन की यथार्थ स्थिति को अभिव्यक्त दी गई है। यहाँ लगातार रोजगार की तलाश में पलायन के कारण सन्नाटा बढ़ता ही जा रहा है। अब यहाँ पर एक तरफ अकेले व्यक्ति के पदचापों, झींगुरों के बोलने व पत्तों के हिलने तथा दूसरी तरफ कुत्ते के भूंकने, घोड़े के हिनहिनाने, सियार के बोलने व बाघ के डुकरने की आवाज तक का एहसास सहजता से होने लगा है—

— इन सबसे बाहर
एक बाघ के डुकरने की आवाज़
होगी मेरे गाँव में। (पेज-१०)

इन सारी विषम परिस्थितियों के बावजूद कुछ लोग यहीं रहने के लिए अभिशप्त हैं।

आगे, ‘घर’ कविता में भी पलायन की स्थिति को लेकर कवि चिंतित दिखाई देता है। आज का नव युवक रोजगार की तलाश में अपने परिवार व गाँव से दूर चले जाने के लिए विवश है। और माता-पिता के लिए घर व गाँव के प्रति अति मोह के कारण उसे छोड़कर बच्चों के साथ जाना असंभव हो जाता है। जिससे परिवार टूटते जा रहे हैं। इतना ही नहीं बल्कि बूढ़े माता-पिता को अब विरासत में मिले दीमक लगे घर की चिंता लगातार सता रही है कि इनके पश्चात इसकी देख-रेख कौन करेगा। जैसे—

— दिन-भर लकड़ी ढोकर माँ आग जलाती है
पिता डाकखाने में चिट्ठी का इंतजार करके
लौटते हैं हाथ-पाँव में
दर्द की शिकायत के साथ
रात में जब घर काँपता है
पिता सोचते हैं जब मैं नहीं हूँगा
क्या होगा इस घर का। (पेज-२०)

आगे ‘परछाई’ नामक कविता के अंतर्गत पलायन की बढ़ती प्रवृत्ति के संबंध में कवि कहता है कि आज व्यक्ति चाहे-अनचाहे रोजी-रोटी की खोज में अपना घर, परिवार, रिश्ते-नातों से दूर होता जा रहा है। किंतु इस विछोह के बावजूद वह उन पलों को नहीं भूला पाता है जिन्हें उसने बचपन में अपनों के साथ बिताया था। जो लगातार परछाई की तरह उनका पीछा कर रही हैं। इसीलिए कवि कहता है—

परछाई उतनी ही जीवित है
जितने तुम (पेज-४०)

इसी चिंता को यहाँ इस तरह देखा जा सकता है। 'शहर एक' में कवि चिंतित है कि लोग अपनों से दूर शहर में कैसे रह सकते हैं। 'शहर दो' में स्थितियों को एकदम साफ करते हुए वह कहता है कि शहरों में व्यक्ति को रोजगार के अवसर अधिक उपलब्ध हो जाते हैं। शहर में रहते हुए व्यक्ति को अपने सपने पूरा करने का अवसर मिलता है जिससे लगातार शहर में बढ़ते जा रहे लोगों की संख्या; चिंता का विषय बनी हुई है। यहाँ का व्यक्ति मशीन की तरह जीवन जीने के लिए अभिशप्त है —

— एक भीड़ में शहर
लाठियों की तरह हम पर टूट रहा है
एक जासूस की तरह हरदम
हमारी हरकतों से गुजर रहा है
फफूंद की तरह फैल रहा है
शहर हम पर। (पेज-५२)

आज व्यक्ति अच्छी शिक्षा प्राप्त करने, उज्वल भविष्य को गढ़ने व स्वप्नों को पूरा करने के लिए शहर की ओर बढ़ रहा है और हमारे गाँव लगातार अपनी पहचान खोते जा रहे हैं।

'आते-जाते' कविता के माध्यम से कवि ने जीवन के विविध आयामों को खोलकर रख दिया है। इसके अंतर्गत बताया गया है कि भूख मनुष्य के स्वतंत्र विचारों व इच्छाओं का दमन कर देती है। इसी के चलते मनुष्य मिल मालिकों अथवा आर्थिक रूप से सम्पन्न लोगों के हाथों की कठपुतली बना रहता है। वह अपने सपनों को ताक पर रखकर इनके सपनों को साकार करने के लिए मजबूर है। इस सबके बावजूद चाहे वह आदमी हो अथवा औरत दोनों ही दिखावे का जीवन जीने के लिए विवश हैं। आज इस तरह के माहौल के बीच चाहे वह स्त्री हो या पुरुष अथवा बच्चे सभी के बीच आगे बढ़ने की होड़ लगी हुई है। इस दौड़ के अंतिम छोर का किसी को कोई पता नहीं है। जिसके चलते इंसान मशीन बनकर रह गया है।

यथा — बाहर एक सड़क कहीं जाती हुई
एक बस होगी हमें वहाँ ले जाती हुई
एक नौकरी होगी धमकाती काम कराती हुई। (पेज-१२)

आजादी मिलने के बावजूद आज हमें अपने ही देश में; अपने ही लोगों के बीच; अपनी सुरक्षा का भय लगातार सता रहा है। आज बुद्धिजीवी वर्ग भी इस बात को लेकर चुप्पी साधे हुए है।

इन के विचार इन के मस्तिष्क में ही दम तोड़ते दिखाई दे रहे हैं। और जो लोग साहस दिखाकर वक्त-बेवक्त बेनाम विचारों को समाज के समक्ष छोड़ देते हैं, वे जहाँ एक तरफ शोषित वर्ग के लिए संजीवनी का काम करते हैं वहीं दूसरी तरफ शोषक वर्ग के लिए कफन की व्यवस्था करते दिखाई देते हैं। जैसे

हमारे शब्द से कितनी दूर
जिंदा रहते थे लोग
हमारी चींख से कितनी दूर मार दिए जाते थे वे
किसी मोड़ पर, । (पेज-१३)

‘गिरना’ शोषक वर्ग द्वारा शोषित वर्ग पर किए जाने वाले अत्याचारों का प्रतिनिधित्व करती कविता है। वे अपने विरुद्ध उठने वाली आवाजों को बड़े ही सलीके से हमेशा-हमेशा के लिए खामोश कर देते हैं। और यदि कोई इनके कहर से बच भी गया तो इनके द्वारा उनकी प्रगति के सभी रास्ते बंद कर दिए जाते हैं। ये इतने संवेदनहीन हो गए हैं कि जन-सामान्य का रोना व चिल्लाना इनके लिए कोई महत्त्व नहीं रखता है। जैसे —

— उस पर कोई चीखता है
बर्फ पर उसकी आवाज फैलती है
जैसे खून की लकीर । (पहाड़ पर लालटेन - पेज-१४)

आगे ‘सम्राज्ञी में’ शोषक वर्ग निरंतर अपने बल-बूते सम्पूर्ण समाज को चलाने का प्रयत्न तो करता है किंतु उन्हीं के बीच उपस्थित रहने के लिए अंगरक्षकों का सहारा भी लेने को मजबूर हो जाता है। कुछ को तो अपने अंगरक्षकों से ज्यादा कुत्ते अधिक वफादार लगते हैं—

— सामने से एक कुत्ता निकल रहा है
अपने आलीशान घर की ओर जाता हुआ
जहाँ कुत्ते से अधिक खतरनाक एक आदमी
रोज तुम्हें चौंकाता है
कुत्ते से सावधान ! (पेज-३४)

कवि सर्वहारा वर्ग को लेकर चिंतित है। वे कहते हैं कि हम लोग विकास के नाम पर बड़ी-बड़ी बातें करते हैं, बड़ी-बड़ी गोष्ठियों का आयोजन करते हैं। क्या इससे सर्वहारा वर्ग के विकास लिए कोई मार्ग निकल पाता है? कवि सर्वहारा वर्ग की आवाज बनकर एक प्रश्न खड़ा करता है। क्या हम भूख से तड़पते लोगों के लिए सच में कुछ कर रहे हैं? क्या हम उनके हाथ में कोई ऐसा हथियार थमाने में सक्षम हैं जो सदा-सदा के लिए उनकी भूख प्यास से उन्हें निवृत्ति दिला सके। यदि हम इस तरह के कोई उद्देश्य को लेकर नहीं जी रहे हैं; तो हमारा जीवन व्यर्थ है—

— बिना उद्देश्य के
बिना प्रेम किए
बिना लड़े
चलते हुए हम अपने साथ
ले जाते हैं अपने शब्द
पैरों के पीछे खामोशी छोड़ते हुए । (पेज-६३)

कवि को अपने साथ-साथ समाज की चिंता भी लगातार सताती रहती है। वे कहते हैं कि यदि जीवन को सार्थक बनाना है तो अपने साथ-साथ सर्वहारा वर्ग को भी अपने पाँवों पर खड़ा होने योग्य बनाना है।

‘यहाँ थी वह नदी’ कविता के अंतर्गत कवि लगातार पर्यावरण में आ रहे असंतुलन को लेकर भी चिंतित दिखाई देता है। कवि को आज अपने घर के पास बहती उस नदी की याद आ रही है जो अपने किनारे स्थित पत्थरों का स्पर्श इस प्रकार करती थी मानो वह उन्हें चूम रही हो; जिसकी कल-कल करती आवाज मन को मोह लेती थी।

उसके पास अपनी प्यास बुझाने के लिए पक्षियों का झुंड का झुंड आया करता था। उसके किनारे नाविक नाव लेकर आने-जाने वालों का इंतजार किया करता था। आज वहाँ पर सिर्फ उसके अवशेष मात्र रह गए हैं जिसे कवि ने इस प्रकार व्यक्त किया है —

— हमें याद है
यहाँ थी वह नदी इसी रेत में
जहाँ हमारे चेहरे हिलते थे
यहाँ थी वह नाव इंतजार करती हुई। (पेज-१६)

अब कवि को यहाँ जीवन व्यतीत करने का कोई अर्थ नहीं दिखाई देता है। क्योंकि न ही अब यहाँ उसे आकर्षित करती किसी तरह की चहल कदमी सुनाई देती है और न ही जीवन दायिनी जलराशि युक्त कल-कल करती वह नदी।

स्त्री-जीवन जीवन को रेखांकित करती ‘एक स्त्री’ नामक कविता स्त्रियों के विविध वर्गों को अभिव्यक्ति देती है। सबसे पहले उन स्त्रियों की बात की गई है जो दिन भर थके हारे; होने के बावजूद पूर्व नियोजित कार्यों को समय पर पूरा करती हैं। ताकि अगले दिन के कार्यों को समय जाया किए बगैर समय पर प्रारंभ किया जा सके। दूसरे उन स्त्रियों का वर्णन किया गया है; जो चुपचाप पुरुष वर्ग द्वारा निर्धारित पैमानों से हटकर एक कदम भी चलना नहीं चाहती हैं या उन्हें चलने नहीं दिया जाता है। और तीसरी स्त्री वह है; जो अपना संपूर्ण जीवन रोने बिलखने में निकाल देती है। जिसके जीवन में समय से पहले ही बुढ़ापा दस्तक दे देता है और कुछ स्त्रियाँ ऐसी भी हैं जो अपने अधिकारों को लेकर पूर्ण रूप से सजग हैं; और समय के साथ चलना चाहती हैं —

— जैसे रात को आँखें बंद किये हुए
एक स्त्री सोचती है
समय बीत रहा है
समय बीत जायेगा आँखें बंद किए हुए। (पेज-२१)

कवि स्त्री के विविध रूपों का उल्लेख कर

उनके समक्ष विकल्प उपस्थित कर रहा है। साथ ही उसे अपने अधिकारों के प्रति सजग भी समीचीन

कर रहा है।

आगे 'दुःस्वप्न' में एक और स्त्री का उल्लेख किया गया है जो जीवन में लगातार अपनी खुशियों का गला घोटते हुए दूसरों के जीवन में खुशियाँ भरने के लिए अभिशप्त दिखाई देती है। वह जब तक अपने पिता के घर में रहती है तब तक वहाँ के तौर-तरीकों को सीखती है। और जब तक वह आस-पड़ोंस के साथियों के साथ तालमेल बैठाने योग्य बनती है; तभी उसे ब्याह कर एक ऐसे परिवेश में भेज दिया जाता है, जो उसके लिए एकदम नया होता है और जिसे समझने-बूझने के लिए उसे एक बार फिर से जन्म लेना पड़ता है। इसके बावजूद लोगों का उसके प्रति रुख इस प्रकार होता है —

— बाहर हवा में पत्ते उड़ते हैं
लोग चहलकदमी करते हैं
वह दिन-भर का हिसाब जोड़ती है
और देखती है अंत में
ज़रा-सा अफसोस। (पेज-२७)

बच्चों का जीवन संघर्षपूर्ण होता है। किन्तु वे उनकी परवाह किए बिना हर परिस्थिति से उबरने में सक्षम होते हैं। वे इसी उम्र में बड़े-बड़े सपने देखते हैं और साथ ही उन्हें पूरा करने का सामर्थ्य भी रखते हैं। इसी दौरान वह जीवन के खट्टे-मीठे अनुभवों से भी गुजरते हैं और अचानक एक दिन वे बड़े हो जाते हैं। तब उसे रह-रहकर अपने सपने याद आने लगते हैं। वह देखता है कि

— सपनों की जगह जली हुई जमीन थी।
जहाँ कभी-कभी सुन पड़ती थी।
उसके माँ-बाप के रोने की आवाज़। (पहाड़ पर लालटेन; बच्चे - पेज-२२)

व्यक्ति के जीवन में कुछ दिन ऐसे आते हैं जिनमें वह काफी खुश दिखाई देता है। ऐसे दिनों को कवि ने 'सबसे अच्छी तारीख' में व्यक्त किया है। कवि का कहना है कि ये तारीखें हमें बार-बार याद आती हैं; जिन तारीखों में उन्हें कुछ ऐसे लोग मिलते हैं, जिनके कार्य, व्यवहार और सादगीपूर्ण जीवन आदि अविस्मरणीय होते हैं। ऐसे लोगों के संपर्क में आने से उसके जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन देखने को मिलता है। ऐसी अवस्था में उसकी अपने कार्यों के प्रति रुचि बढ़ती है और प्रकृति के सभी तत्त्व उसे आनंददायी प्रतीत होने लगते हैं। यथा-

सबसे अच्छी तारीख है वह
जिस पर टंगे रहते हैं घर-भर के
धुले कपड़े
जिसमें फैली होती है
भोजन की गर्म खुशबू
जिसमें फल पकते हैं
जिसमें रखी होती हैं चिट्ठियाँ और यात्राएँ। (पेज-२४)

अर्थात जीवन को खुशहाल बनाए रखने के लिए अच्छी विचारधारा से संबद्ध लोगों के संपर्क की आवश्यकता होती है।

कविता के निर्माण को लेकर मंगलेश डबराल कहते हैं कि कविता व्यक्ति से स्वयं को रचने के लिए मंथन करवाती है। जिसके चलते वह अपनी सुध-बुध खो देता है और संबंधित विषय को लेकर लगातार मथता रहता है। यहाँ तक की नीद में भी कविता उसे बेचैन करती रहती है अर्थात व्यक्ति नीद में भी पूर्ण रूप से क्रियाशील बना रहता है। इसीलिए अंततः कविता उससे पूछने के लिए विवश हो जाती है क्या तुमने खाना खाया रात को ? (पेज-२५)

‘पानी की रात’ कविता में पहाड़ों पर बहने वाली उन नदियों का उल्लेख किया है जो अपने स्वच्छ जल के लिए जानी जाती हैं। इसे पीने से पहले न तो फिल्टर करने की आवश्यकता है और न ही किसी अन्य शुद्धिकरण के दौर से गुजरकर परीक्षा ही देनी होती है। वह तो जीवनदायनी अमृतस्वरूपा है जिसे सीधे अंजुली में भरो और पी जाओ। लेकिन जब उसमें कभी पानी बढ़ जाता है तो वह अपना आपा खो देती है और अपने आस-पास फैली किसी भी वस्तु अथवा प्राणी की चिंता तक नहीं करती अर्थात सभी को अपने साथ शुमार कर लेती है। ऐसी अवस्था में उसके समक्ष रोने गिड़गिड़ाने का कोई अर्थ नहीं बनता है। इसके इस भयावह रूप की एक झलक इस प्रकार है

— पत्थरों पर पानी सिर फोड़ता था
पानी के आदमियों जैसे हज़ार-हज़ार सर
और धुंध में जमता झाग
रात में चमकता हुआ। (पेज-३१)

‘आखिरी वारदात’ बढ़ते जा रहे शहरीकरण की ओर इशारा करती कविता है। जहाँ इंसानियत को ताक पर रखकर व्यक्ति स्वकेन्द्रित होता दिखाई दे रहा है। चारों तरफ एक धुँआ सा फैल गया है। जहाँ व्यक्ति के वास्तविक व्यक्तित्व की पहचान कर पाना कठिन होता जा रहा है। महंगाई के इस दौर में स्त्री, पुरुष, बूढ़े और बच्चे सभी रोजगार की तलाश में घर से बाहर निकलने के लिए अभिशप्त हैं। लेकिन उनकी सुरक्षा के इंतजामात नगण्य हैं अतः स्त्रियों को घर व दफ्तर से बाहर निकलते हुए फूँक-फूँक कर कदम आगे बढ़ाने होते हैं —

— मैंने देखा कई साल से
स्तब्ध लड़कियों को
जो दफ्तरों से निकलकर
कटे हुए पौधों की तरह फैल जाती हैं
सड़कों पर कहीं न देखती हुई। (पेज-३३)

इस तरह कवि ने सुरक्षा व्यवस्था की पोल खोलकर रख दी है। जिसका प्रमाण आए दिन घटित होने वाली तरह-तरह की घटनाएँ हैं।

‘थकान’ दूरदर्शिता को लेकर चलती जन सामान्य के स्वप्नों की कल्पना की अभिव्यक्ति है। कवि का मानना है कि व्यक्ति का अपनी पूरी सामर्थ्य के साथ कर्मरत रहना अवश्यक है। ऐसा करने से न तो उसे कार्य से संबंधित दुख ही सता पाएगा और न ही मस्तिष्क में कुविचारों को प्रवेश करने का अवसर ही मिल पाएगा। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या इस तरह के अथक परिश्रम के बावजूद जन सामान्य को उसका प्रतिसाद मिल पाता है ? क्या वह अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा कर पाने में सक्षम है ?

— शाम को सारी दुनिया को झाड़कर
बिस्तर पर
औंधा होकर अंत में
क्या बचता है कंधे पर बैठे दुःख के अलावा
आत्मा पर फफूंद के अलावा क्या बचता है
अंत में। (पेज-३५)

ऐसी स्थिति में जन-सामान्य के लिए गोस्वामी तुलसीदास जी की ये पंक्तियाँ ही सहारा बन सकती हैं —

— गोधन, गजधन, बाजि धन, और रतन धन खान।
जब आवे संतोष धन, सब धन धूरि समान ॥

‘तुम्हारा प्यार’ पहाड़ी लोकगीत से प्रेरित रचना है। जहाँ एक प्रेमी अपनी प्रेमिका के प्यार को लड्डुवों के थाल में, लाल रंग के रूमल में, खुशहाली के प्रतीक हरे-भरे पेड़ों में, प्रेम की गहराई के प्रतीक झील में और उसके प्यारे गाँव में सर्वत्र महसूस करता है। जो प्रेम की पराकाष्ठा को अभिव्यक्त करता है —

— तुम्हारा प्यार पूरा गाँव है
जहाँ मैं होता हूँ। (पेज-३९)

यही प्यार आगे ‘लम्बा रास्ता’ कविता में स्वप्न के माध्यम से अपनी उपस्थिति दर्ज कराता है। जहाँ प्रेमी अपनी प्रेमिका से दूर रहते हुए भी उसके काफी करीब होता है। वह कहता है कि —

— तुम गुज़रती जाती हो आहटों से दूर
हाथ बढ़ाकर मैं तुम्हारे हाथ छूता हूँ
चौराहों पर रोशनियों के बीच
उदास और लम्बे रास्ते से चलकर आये
मेरे चुंबन।
तुम्हारे चेहरे पर थरथराते हैं कुछ देर
कोहरे की तरह। (पेज-४९)

इस प्रकार प्रेमी अपनी प्रेमिका से दूर रहते हुए भी उसके करीब बना रहता है। इतना ही नहीं

बल्कि उसके सान्निध्य सुख का भी भोग करता है।

‘मकान’ एक व्यवस्था का प्रतीक है जो व्यक्ति के जीवन में स्थिरता लाता है। जिसके पश्चात् व्यक्ति जीवन के अगले पड़ाव की ओर अग्रसर होता है। और इसके वारिसों की संख्या में इजाफा करता जाता है। अब इसमें उसके साथ-साथ उसकी पत्नी के सपने भी जन्म लेने लगते हैं। आगे चलकर यही घर उनके बच्चों की जन्मस्थली का गवाह भी बनता है। यही वह स्थान होता है जिससे अपनों की यादें सदियों तक जुड़ी रहती हैं—

— यह मकान सारा कुछ छिपाये हुए है।

अपने अंधकार में औरत

औरत का स्वप्न

औरत का बच्चा

औरत की मौत। (पेज-४१)

पहाड़ हमारी संस्कृति और परंपराओं का प्रतीक हैं। जिससे हमें लगातार आगे बढ़ने का बल मिलता है। जिसके सान्निध्य में रहकर प्रत्येक व्यक्ति को विषम परिस्थितियों में अडिग रहने की प्रेरणा मिलती है। वे जीवन पर्यंत संघर्ष करते हुए कुछ ऐसा कर गुजरने की इच्छा रखने लगते हैं जिससे उन्हें अमरता प्राप्त हो सके। यह पूरी की पूरी जीवटता उनके जीवन में पर्वतों ने भर दी है। जो विषम परिस्थितियों में भी अडिग रहते हैं—

— पहाड़ तब भी हैं जब तुम नहीं हो। (पेज-४२)

‘शब्द’ कविता में शब्दों की ताकत को अभिव्यक्ति दी गई है। इसके तहत बताया गया है कि शब्दों के विविध प्रकार होते हैं। जिनमें कुछ शब्द चींखते हुए प्रतीत होते हैं तो कुछ शब्द समाज में व्याप्त विसंगतियों को देखकर चुप नहीं रह पाते हैं। वे उन स्थितियों का विरोध करते हैं जो समाज के विकास में घातक होते हैं और कुछ शब्द इतिहास का उल्लेख करते नहीं थकते हैं। वे इतिहास की पतल पतल खोलने में सक्षम होते हैं तो कुछ शब्द खामोश होते हैं। वे स्थितियों के मूक दृष्टा बने रहने में ही संतुष्ट दिखते हैं—

— कुछ शब्द चींखते हैं

कुछ कपड़े उतार कर

घुस जाते हैं इतिहास में

कुछ हो जाते हैं खामोश। (पेज-४५)

चिड़िया सदा से ही बड़ी साहसी व कर्मठता का प्रतीक रही है। जिसके जीवन में निराशा दूर-दूर तक नहीं दिखाई देती है। वह सदा संघर्षरत रहते हुए विषम परिस्थिति का हल खोजने में सक्षम है। निराशा भी उसके सामने घुटने टेक देती है। यह स्थिति हरिवंश राय बच्चन की कविता ‘नीड़ का निर्माण फिर-फिर’ की याद दिला देती है। उनके यहाँ चिड़िया के साहस को देखिए—

एक चिड़िया चोंच में तिनका
लिए जो जा रही है
वह सहज में ही पवन
उंचास को नीचा दिखाती।

इसी परंपरा को आगे बढ़ाते हुए; डबराल जी ने भी 'चिड़िया' कविता के माध्यम से उसके साहस, संघर्ष व संवेदनशील व्यवहार का उल्लेख किया है। वे कहते हैं कि आज उनके घर में घायलावस्था में पहुँची चिड़िया कभी वायुमंडल में विचरण करते समय पचास तरह की बयारों का सामना करने में सक्षम थी। वह अपने दुश्मनों की परवाह किए बिना पूरे साहस के साथ सीमाहीन गगन में घूमा कारती थी। वह तमाम तरह की वस्तुओं को अपनी छोटी सी चोंच से चीरकर अपने उपयोग योग्य बना लेती थी। आज वह उसे अंतिम सांस लेते हुए देख रहे हैं—

— चिड़िया को हम
हमेशा उसकी मृत्यु के बाद देखते हैं
हवा उसके डैनों से लिपटकर मर चुकी है
आसमान उसकी पुतलियों में
सिकुड़कर स्याह हो गया है
ठंडे फर्श पर उसकी बारीक साँस
लांघती जाती है
सड़ी हुई टहनियों, ज़मीन में गिरे घोंसलों
और चिंचियाते बच्चों का संसार। (पेज-४६-४७)

इस प्रकार कवि ने मृत्यु की दहलीज पर दस्तक देती चिड़िया को देखा है और साथ ही उसके मन मस्तिष्क में चल रहे भावों को अभिव्यक्त करने में सफलता पाई है।

'रेल में सात कविताएँ' में कवि रेल सफर के दौरान के अनुभवों को व्यक्त करता है। यह एक ऐसा सफर है जिसमें हम सहजता से लम्बी-लम्बी दूरियाँ चंद घंटों या कुछ दिनों में पूरा कर लेते हैं। एक तरफ कवि को इस दौरान यात्रा करने वाले स्त्री, पुरुष, बच्चे व युवाओं के क्रिया-कलापों से रूबरू होने का मौका मिलता है तो दूसरी तरफ खिड़की के बाहर झाँकने पर प्रकृति के मनोहारी दृश्य दिखाई देते हैं

मैंने उसे देखा और
मैं अभिभूत हुआ
ओ दृश्य मैं तुझे याद रखूँगा /हमेशा
कि मैं अभिभूत हुआ। (पेज-५९)

'पहाड़ पर लालटेन' कविता पहाड़ी जन-जीवन की पर्तें खोलने में सक्षम है। यहाँ पर पुरुषों से अधिक औरतें कर्मठ होती हैं। वे दिनभर खेत खलिहानों से लेकर जनवरों की देखभाल करते हुए

घर के सभी सदस्यों के लिए समय-समय पर भोजनादि की व्यवस्था करती हैं। उसे प्रातः तीन बजे से रात के लगभग दस बजे तक घर के कार्यों में खटते रहना पड़ता है। वह अपनी जान की परवाह किए बगैर सूर्योदय तक जंगल से लकड़ियों का गड्ढर तैयार कर लेती है तथा उसे बेचकर कमायी गई पूँजी से घर का राशन भरती हैं लेकिन किसी के आगे हाथ नहीं फैलाती हैं। यहाँ पर गरीबी इस कदर छाई हुई है कि ठंड के दिनों में भी उनके पैरों में चप्पल तक नहीं दिखाई देती। कभी-कभी तो ये जंगली जानवरों का शिकार तक बन जाती हैं।

दूसरी तरफ लगातार कटते जा रहे पेड़ों से पर्यावरण का संतुलन बिगड़ता ही जा रहा है। जिन पहाड़ों को कभी इनके पूर्वजों ने सवारा था; आज वही पहाड़ प्राकृतिक आपदाओं के शिकार हो रहे हैं। लोगों के भूखों मरने की नौबत आ गई है —

— तुम्हारी आत्मा में
चूल्हों के पास पारिवारिक अंधकार में
बिखरे हैं तुम्हारे लाचार शब्द
अकाल में बटोरे गये दानों जैसे शब्द। (पेज-६५)

कवि की मान्यता है कि भूख से उत्पन्न स्थितियों से त्रस्त लोगों की आँखों में लालटेन की तरह जलती हल्की सी लौ ने विकराल रूप धारण कर लिया है। भूख, महामारी व बाढ़ से त्रस्त जन-समुदाय को बचाने के लिए लोगों ने अपने खेत गिरवी रख दिए और औरतों ने गहने। इसके बावजूद उन्हें न्याय न मिलता देख सामान्य जन आक्रोश से भर उठता है —

— अपनी भूख को देखो
जो एक मुस्तैद पंजे में बदल रही है
जंगल से लगातार एक दहाड़ आ रही है
और इच्छाएँ दाँत पौने कर रही हैं
पत्थर पर। (पेज-६५)

इस प्रकार कवि ने असहाय व त्रस्त जन-सामान्य पर हो रहे अन्याय को अभिव्यक्त किया है और बाद में इसी असहाय जनता द्वारा उसका विरोध दिखाकर क्रांति का बिगुल बजाया है।

‘खिड़की’ कविता इस संग्रह की अंतिम कविता है। जिसमें कवि ने पलकों को खिड़की के समान कहा है। यहाँ बताया गया है कि जिस प्रकार खिड़की के खुलने से प्रकृति के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं। उसी प्रकार पलकों को खुली रखने से समाज में व्याप्त विसंगतियों से रूबरू हुआ जा सकता है। जो हमें अपने अधिकारों के प्रति तटस्थ ही नहीं करता बल्कि सामाजिक क्रांति का संकेत भी देता है —

— आँखों की तरह
मुझे यह खिड़की खोलनी चाहिए
जो तमाम खिड़कियों के

खुलने की शुरुआत है। (पेज-७२)

समग्रतः मंगलेश डबराल की कविताएँ समाज के विविध पक्षों से अपने पाठकों को रूबरू कराती हैं। इनकी कविताएँ समाज में व्याप्त विसंगतियों का प्रामाणिक दस्तावेज हैं। इनके यहाँ सामाजिक समस्याओं को बड़े ही सलीके से उठाया गया है, साथ ही उसके समाधान को भी अभिव्यक्ति दी गई है। इनकी कविताओं में विशेष रूप से प्रकृति के कोमलतम तत्त्व या तो हथियार बनकर प्रस्तुत हुए हैं या प्रेरणास्रोत बनकर आए हैं। भाषा की दृष्टि से इनकी कविताएँ बड़ी सहजता के साथ परिवेश व परिस्थितियों को अनुकूल अर्थ देने में सक्षम हैं। अस्तु !

विभागाध्यक्ष,
हिन्दी विभाग,
रामनारायण रुइया स्वायत्त महाविद्यालय,
माटुंगा, मुंबई

आकलन

● अरुणा दुबलिश

अपनेपन के कवि-मंगलेश डबराल और 'घर का रास्ता'

'घर का रास्ता' कवि मंगलेश डबराल के व्यक्तित्व का आइना है। वह व्यक्तित्व जिसमें अपनापन है, सहजता है, भोगे यथार्थ को अभिव्यक्ति देने की बेचैनी है। समसामयिक चेतना से सम्बद्ध उनकी कविताएँ सामाजिक यथार्थ व विसंगतियों का बोलचाल की भाषा में व्यंग्यपरक खाका खींचती हैं। ये कविताएँ राजनीतिक अर्थहीनता, सामाजिक तटस्थता, वैयक्तिक बेचैनी, यथास्थिति की स्वीकृति, तनाव, विद्रूपता, नियति और विडंबना आदि की सच्ची तस्वीरें प्रस्तुत करती हैं। व्यक्ति कैसे समाज के साथ निस्संग हो उठता है 'आश्चर्य लोक' व अन्य कविताओं में इसी की अभिव्यक्ति है। अकेले जीने की आदत मनुष्य को सुख पहुँचाती है। संवेदनशून्यता के बीच आम आदमी की तकलीफ के अहसास का बयान कवि व्यंग्य के माध्यम से करता है। सच तो यह है कि आज का व्यक्ति जो स्वयं समस्याओं से ऊपर उठ चुका है और तटस्थता की जिंदगी जी रहा है वह समाज के दुःखी लोगों के लिए पूर्णतः संवेदनहीन हो गया है-

“जाते ही धम से कुर्सी पर बैठ
कुछ देर मैं खोयाखोया सा लगूँगा
तभी आएगा एक नाराज आदमी
हद हो गई अब नहीं होता बर्दाश्त
देखिए शहर में खुलेआम घूमते हैं हत्यारे
थोड़ा मुस्कराते हुए मैं कहूँगा भाई
अच्छे खासे तुम क्यों चले आए इस शहर
तुम जैसों के रहने की नहीं है यह जगह
अन्ततः मैं शांत और संतुष्ट रहूँगा
बिना हैरत बिना अफ़सोस
सोचता हुआ कैसे सुलझा लिए मैंने जीवन के संकट

इसी तरह चलता है संसार
कुछ दिन मन में विद्रोह होता है, घुमड़न रहती हैं
कोई दुःख देखकर नीची कर लेनी होती है निगाह'

मानवीय और प्रासंगिक बुनियादी रिश्तों की समझ, अपने चारों ओर की जिंदगी के प्रति खुली और जागरूक दृष्टि कवि को सामान्य से असामान्य की ओर ले जाती है। 'एक पारदर्शी ईमानदारी और आत्मिक चमक' है मंगलेश की कविताओं में। 'बहुत सामान्य सी लगनेवाली चीजों का मर्म भी मंगलेश की कविता इस तरह खोलती है कि उसमें से एक पूरी दुनिया झांकने लगती है- (प्रयाग शुक्ल)। 'पैदल बच्चे और स्कूल' कविता में इन्हीं मानवीय सूक्ष्म भावनाओं का चित्रण है-

'पैदल बच्चों के पास छिपाने के लिए कुछ नहीं है
किताबों के बीच तितलियाँ नहीं
जूते भी नहीं जिन्हें वे रख सकें
झाड़ी के पीछे
कई बार उन्हें हिदायत दी गई है
जूते पहनकर आने की
हाथ पैर के नाखून कलात्मक काटने की
कई बार पड़ी है बेंत
और कहा गया है कि हम तुम्हें नहीं ले जाएंगे
महापुरुषों की अगवानी में'

यद्यपि ये कविताएँ सीमित परिवेश से जुड़ी हैं फिर भी व्यापक मूल्यों, प्रश्नों और संदर्भों को उभारती हैं। 'सजग रचनाकार अपने समय की लोक चेतना का साक्षी होता है। ... वह उस व्यग्रता को पकड़ता है जो बृहत्तर समाज को विकल कर रही होती है और अभिव्यक्ति की राह खोज रही होती है। (डॉ. आनंद प्रकाश दीक्षित, समकालीन कविता, पृ. २९) संरचना कविता में स्त्री की सहनशक्ति, लगातार मेहनत करनेवाले उसके हाथ-पैर, उसके मन की दृढ़ता, कभी न हार माननेवाली अस्मिता दिखाई देती है-

मैं कहना चाहता था तुम पृथ्वी हो
तुम में शुरू होता है जीवन तुम में खत्म
बाहर रोशनियाँ बुझ रही थीं
पेड़ों और चेहरों पर धूल जमती थी
खत्म होने को थी शताब्दी
उसने कहा मुझे मालूम है भविष्य

मैं रोज देखती हूँ अपने हाथ पैर
जहां से चढ़कर आता है अंधकार
एक पवित्र देह में दहती रही
मैली कुचैली एक आत्मा झुर्रियों से भरी
धीरे-धीरे सिकुड़ती हुई

अभावात्मक तरीके से प्रस्तुति के बावजूद ये कविताएँ सकारात्मक मूल्यों की ही प्रतिष्ठा करती हैं। आक्रोश को बहुत संयत तरीके से व्यक्त किया गया है। संघर्षरत मूल्यों ने कविता को जमीन के रिश्ते से जोड़ा। जीवन और समाज के छद्म को उधाड़ना कविता का दायित्व है और इस दायित्व को कवि ने ईमानदारी से निभाने की कोशिश की है-

“सेनाओं ने सही है मुसीबतें
हत्यारे के लिए
सेनाएँ कट मरेंगी हत्यारा जीतेगा
हर बार जीतने के बाद
लाशों के बीच अकेला खड़ा
हत्यारा कहेगा
अब मैं जाता हूँ बुद्ध की शरणा” पृ. ५१

‘दूसरा हाथ’ आज की जिंदगी की कड़वी, जटिल और भयावह सच्चाइयों का साक्षात्कार है जो मनुष्य को उसके शाश्वत मूल्यों और आत्म सम्मान से वंचित करनेवाली उस स्थिति को उघाड़ता है जिसमें मानवीय अस्तित्व को विकृत बना देने का षडयंत्र है। यह स्थिति केवल उपयोगी को स्वीकार करती है और जो उसके काम का नहीं है उसे छोड़ देती है-

“आखिरकार मेरे पास एक ही हाथ है
उससे कितने काम कर सकता हूँ मैं
मैंने कहा
मेरा दूसरा हाथ लगभग बेकार है
कम ही काम आता है यह किसी के
और अक्सर मुझे याद नहीं रहता
कि एक दूसरा भी हाथ है मेरे पास

जब हद हो जाती है

तब दूसरा हाथ कभी कभी जब लाना है अपना विरोध काँफता दर्द कटूता हुआ” (पृ. २१)

आत्मलीनता होते हुए भी आसपास के जीवन से जुड़ी हुई हैं ये कविताएँ। सकारात्मक दृष्टि और उद्देश्य से जुड़कर अपने अनुभव की सूक्ष्म वैचारिक स्तर पर अभिव्यक्त किया है। कविताओं के पीछे ‘दृष्टि का एक सार्थक संदर्भ’ है। सत्ता और टूट जैसे लोक भाषा के शब्दों के प्रयोग ने इसी सार्थक संदर्भ को उकेरा है-

“प्यारे पत्ते हो तुम उन्होंने कहा

कोमल और हिलते हुए

तुम्हारे विचार हैं तुम्हारी ही तरह

मुझे होना चाहिए एक टूट

जो खुशी से फूल नहीं जाता

मुरझाता नहीं

पाला पड़ने पर रंग नहीं बदलता

रह लेता है कहीं भी

शहरी साँस लेता हुआ” (पृ. १६)

प्रकृति का यह मानवीय संदर्भ पेड़ कविता में भी दिखाई देता है। साधारण जन का आत्म संघर्ष, मूल्यों के प्रति गहरा समर्पण और जबर्दस्त सहनशक्ति इन कविताओं में दिखाई देती है-

“पृथ्वी और आकाश उनमें एक साथ मौजूद हैं

जब हम नहीं थे तब भी थे वे पेड़

उनसे ज्यादा उनकी स्मृतियाँ हैं हमारे पास

वे बने हैं करोड़ों चिड़ियों की नींद से

हमने उन्हें कभी नाराज या बौखलाते नहीं देखा

नहीं देखा सर धुनते हुए

वे सोचते रहते हैं कुछ

पृथ्वी और आकाश में बराबर बँटे हुए” (पृ. १७)

‘करोड़ों चिड़ियों की नींद से’ प्राकृतिक दोहन पर सीधा प्रहार है-जब काट देते हैं हम कोई विशाल वृक्ष अपने स्वार्थ के लिए। कितने पक्षी बेघर बेदर हो जाते हैं। वृक्ष काटना अर्थात् मानवीय चेतना का अपाहिज और पंगु होते जाना।

‘सपना’ कविता में बुद्धिजीवियों की लापरवाही समझौता परस्ती, मौका परस्ती और सबसे बढ़कर उस दोगलेपन का चित्रण है जो अपने आगे किसी दूसरे को बढ़ते नहीं देख सकता-

“में गिरा एकाएक/जैसे सपने से
जैसे चलते-चलते कोई गिरता है
सड़क पर अध बीच
यह मेरी त्वचा के गिरने का सपना था
अपनी आत्मा सहित

किसी ने गिरा दिए/मेरे कपड़े भी
बारिश और हवा से दूर
गिरता रहा मैं धरती/ और रसातल से दूर
गिरते हुए उसकी एक झलक देखी मैंने
जो हँसते हुए मुझे गिरा रहा था लगातार” (पृ. १०)

दूसरी ओर जहाँ रोजमर्रा की जरूरतों को जुटा पाना भी मुश्किल है ऐसे निम्नमध्यवर्ग के व्यक्ति के तनावों और दुःखों की रागात्मक अभिव्यक्ति में लाचारी का अनुभव करते व्यक्ति का चित्रण सीधे कथन और सहज दृष्टि द्वारा किया गया है-

सामने नंगे पहाड़ पर/ जैसे ही चाँद चमकता है
अँधेरे में पिता मांगते हैं थोड़ी सी मदद
माचिस की तीली बराबर रोशनी
कुछ देर की गाढ़ी निर्भय नींद
सुबह सीढ़ियाँ उतरने की सामर्थ्य
और एक लाठी पत्थरों को टटोलने के लिए” (पृ. ३६)

थोथे आश्वासन, संवेदन शून्यता, अमानवीय आचरण की ओर संकेत करती सहन और सीधी कविता बदलती हुई सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति करती है-

“अपना रास्ता चलते हुए/ हम आपस में कहते हैं
संभल कर चलो/ हमें चलना है कई साल

फूलों और भिखारियों को /पीछे छोड़ते हुए हम चलते हैं
रास्ते में बिखरे खून को न देखते / रोते हुए बच्चे से कहते
चुप रहो चुप /अभी चलना है कई साल”

वर्तमान विद्रूपता से भरे परिवेश में सार्थक प्रेम की अनुभूति समाज को स्वीकार्य नहीं है, फिर

भी जिंदगी में प्रेम की सार्थक तलाश लिए-

“प्रेमीजन बसते हैं इस संसार में / खुले आम बहते हैं उनके आँसू
जैसे पेड़ से झरते हों पत्ते, गिरते हों फल / अपनी आँखें नहीं छिपाते चश्मों से
लोग कहते हैं हमें तो कुछ दिखाई नहीं दिया / वहाँ सिर्फ कुछ धब्बे थे रास्ते में”

‘प्रेम करती स्त्री’ में स्त्री के शोषण के उस शाश्वत रूप को चित्रित किया गया है जो सब कुछ के बावजूद सहनशील है, वास्तविक है, सहज और सजीव है। प्रेम मानवीय व्यक्तित्व का निहायत जरूरी तत्त्व है जो जीवन को शाश्वत मूल्यों से जोड़ता है। एक कारुणिक अहसास के साथ यह स्त्री उसी प्रेम को जीती है-

“उसकी सहेलियाँ एक-एक कर / उसे छोड़कर चली जाती हैं
धूप उसके पास आए बिना निकल जाती है / हवा उसके बाल बिखराये बिना बहती है
उसके खाये बिना हो जाता है खाना खत्म / प्रेम करती स्त्री / ठगी जाती है रोज
उसे पता नहीं चलता बाहर क्या हो रहा है / कौन ठग रहा है कौन है खलनायक
पता नहीं चलता कहाँ से शुरू हुई कहानी”

मंगलेश की कविता में आज के जीवन में व्याप्त झूठ, ढोंग, शोषण और गरीब जनता की लाचारी की अभिव्यक्ति भी हुई है जो गहरे संस्कारों से निर्मित व्यक्तित्व के अंदर तक यात्रा करती है। वह सार्थक बदलाव में विश्वास करती है। वह आदर्शिकरण की रोमानी प्रवृत्ति से मुक्त है-

“मैं एक लापता लड़के का / ब्यौरा देना चाहता था
जो कहीं गुस्से में खाता होगा रोटी / देखता होगा अपनी चोटों के निशान
अपने को कोसता / कहता हुआ चला जाऊँगा घर
मैं अपनी उदासी के लिए / क्षमा नहीं माँगना चाहता
मैं नहीं चाहता था मामूली / इच्छाओं को चेहरे पर ले आना
मैं भूल नहीं जाना चाहता था / अपने घर का रास्ता”

संक्षेप में मंगलेश की कविताओं की संघर्ष चेतना समूची मानवीय जिंदगी के भीतर से प्रकट होती है, हालाँकि इनमें सर्वेश्वर, रघुवीर सहस्य, धूमिल या दुष्यंत जैसी सूक्ष्म और प्रखर सामाजिक चेतना नहीं है फिर भी इनका एक आयामी संसार बहुआयामी संसार में विकसित होता है। ये जिम्मेदार कविताएँ हैं जो जमीन से जुड़ी हुई हैं। ये छद्म को उघाड़ती हैं और खोखलेपन पर चोट करती हैं-धीमे से।

- ३७१/६, प्रगति नगर,
मेरठ (उ. प्र.)
पिन-२५०००१

‘समीचीन’ के लिए अशेष शुभकामनाओं के साथ

वसुधा सहस्रबुद्धे

३०६, वटवृक्ष
३६, ब्राह्मण सोसाइटी
नौपाड़ा, ठाणे (पश्चिम)
पिन : ४०० ६०२

समीचीन

जनवरी-जून 2018

66

‘समीचीन’ के लिए शुभकामनाओं सहित

श्रीमती सुनीता गुप्ता

हिंदी विभागाध्यक्ष
एल. एस. रहेजा कॉलेज
सांताक्रुज (पश्चिम),
मुंबई-४०००५४

समीचीन

जनवरी-जून 2018

67

आकलन

● श्यामसुंदर पाण्डेय

मंगलेश डबराल की कविताओं से झाँकता है समाज

समकालीन कविता के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर मंगलेश डबराल की कवितायें समाज की उन सभी वीथियों में विचरण करती दिखाई देती हैं जहाँ सामान्य जन अपनी दैनिक जरूरतों के साथ दो-दो हाथ कर रहा है। ये कवितायें समाज के उस यथार्थ से हमारा सामना कराती हैं जो हर दिन घट रहा है, जो हमारी आँखों के सामने से गुजर रहा है। यहाँ मध्यवर्ग की वह सभी विडम्बनाएँ झाँकती दिखाई देती हैं जिनके बीच आज भारत की सर्वाधिक जनता जी रही है। सच्चाई तो यही है कि कवि ने अपने आस-पास जिन दृश्यों को देखा है वही उनके काव्य के उपजीव्य बन गये हैं। वे स्वयं अपनी कविताओं के सम्बन्ध में लिखते हैं कि - मैंने कहा मैं कविता लिखता हूँ / परिस्थितियों के हिसाब से / जब जो कुछ देखा - हुआ उसे किया दर्ज / जैसे आप पहने हैं नीला रंग / तो उसका भी कुछ होगा / कविता में जिक्र। उनकी कविताओं के ऐसे दृश्यों में सर्वप्रथम आता है समाज की प्रारम्भिक इकाई परिवार। परिवार ही नहीं बल्कि, परिवार का छोटा - बड़ा हर सदस्य विद्यमान है। माता, पिता, बहन, बच्चे, दादा और पत्नी आदि सभी उनकी कविताओं के अंग बनकर किसी न किसी रूप में उपस्थित हैं। कवि सबसे कुछ सीखता है, सबको याद करता है और उनके प्रति मन में उठने वाले भावों को अपनी कविता में व्यक्त करता है। संयुक्त परिवारों में परिवार का मुखिया किस प्रकार अपनी नई पीढ़ी को सजाने - संवारने का कार्य करता है, इसका यथार्थ चित्रण उनकी कविता 'दादा की तस्वीर' में देखी जा सकती है :

दादा के बारे में इतना ही मालूम है / कि वे मांगने वालों को भीख देते थे / नींद में बेचैनी से करवट बदलते थे / और सुबह उठ कर / बिस्तर की सलवटें ठीक करते थे / मैं अपने दादा जितना लंबा नहीं हुआ / शांत और गंभीर नहीं हुआ / पर मुझमें कुछ है उनसे मिलता जुलता / वैसा ही क्रोध वैसा ही मामूलीपन / मैं भी सर झुका कर चलता हूँ / जीता हूँ अपने को एक तस्वीर के खाली फ्रेम में / बैठे देखता हूँ।

ठीक इसी प्रकार 'पिता की तस्वीर' कविता में कवि ने अपने पिता की संवेदना और भावनाओं

का सुंदर चित्रण किया है। जहाँ कवि के पिता जी अपने सपनों को अगली पीढ़ी में हस्तांतरित करते हुए देखे जा सकते हैं - पिता कहते हैं मैं अपनी तस्वीर जैसा नहीं रहा / लेकिन जो नये कमरे जो डे हैं / इस पुराने मकान में उन्हें तुम ले लो / मेरी अच्छाई ले लो उन बुराइयों से जूझने के लिए / जो तुम्हें रास्ते में मिलेगी / मेरी नींद मत लो मेरे सपने लो।

हमारे समाज की सच्चाई भी यही है कि माता - पिता उस छाते की तरह अपनी अगली पीढ़ी को सदा ढके रहना चाहते हैं, जो सर्दी-गर्मी स्वयं सह कर हमें केवल छाया प्रदान करता है। वे सभी संकट स्वयं सहकर अपने बच्चों के लिए एक सुरक्षित राह तैयार करना चाहते हैं। इस कविता में पिता जी के ये सपने निरंतर विकास की तरफ बढ़ते रहने की कामना के सूचक हैं। पारिवारिक संबंधों में माँ त्याग की प्रतिमूर्ति है। मंगलेश जी के काव्य में माँ सभी संकटों से जूझती है लेकिन अपने लिए कुछ भी पाने की इच्छा नहीं रखती। उस माँ के त्याग को अभिव्यक्त करते मंगलेश लिखते हैं कि - घर में माँ की कोई तस्वीर नहीं / जब भी तस्वीर खिंचवाने का मौक़ा आता है / माँ घर में खोई हुई किसी चीज को ढूँढ रही होती है / या लकड़ी घास और पानी लेने गई होती है / जंगल में उसे एक बार बाघ भी मिला / पर वह डरी नहीं / उसने बाघ को भगाया घास काटी घर आकर / आग जलाई और सबके लिए खाना पकाया। माँ अपने बच्चों के पालन-पोषण के लिए हर क्षण स्वयं तत्पर रहती है। उसके लिए अपने जीवन के सुख, कोई महत्त्व नहीं रखते। अपने बच्चों के सुख में ही उसे अपने सुख की अनुभूति होती है। अपना पेट भले न भरे यदि बच्चे संतुष्ट हो जाते हैं तो उस अपने आप ही संतुष्टि मिल जाती है। यही कारण है कि अपने बच्चों के सुख के लिए वह बाघ से भी भिड़ने को तैयार रहती है। पारिवारिक रिश्तों की यह संवेदना कवि के काव्य की निधि है। हम सभी इस बात से अवगत हैं कि आजादी के बाद विकास की जो आंधी चली उसमें गाँव कहीं किनारे छूट गए और शहर तेज रफ़्तार से आगे बढ़ते रहे। रोजगार की तलाश में युवा पीढ़ी शहर की ओर भागी और जिस माता-पिता ने उस पीढ़ी को तैयार करने में रात-दिन एक किया वह गाँव में ही रह गई। शहर में गई पीढ़ी अपनी व्यस्तताओं में लगी रही लेकिन उनके समाचार को पत्रों के माध्यम से पाने की जो व्याकुलता माता-पिता में है उसका बहुत मार्मिक चित्र मंगलेश जी ने अपनी कविता में प्रस्तुत किया है। यथा : दिन भर लकड़ी ढोकर माँ आग जलाती है / पिता डाकखाने में चिट्ठी का इंतजार करके / लौटते हैं हाथ पाँव में / दर्द की शिकायत के साथ / रात में जब घर कांपता है / पिता सोचते हैं जब मैं नहीं हूँगा / क्या होगा इस घर का। पिता की यह चिंता उस हर पिता की चिंता है जो आजीवन अपनी मिट्टी से जुड़ा रहा लेकिन अब उसकी अगली पीढ़ी किसी शहर में चली गई है। पिता की चिंता के साथ ही कवि उस बच्चे की लाचारी भी व्यक्त करता है जिसकी वजह से वह चाह कर भी समय से अपने घर वालों के पास नहीं पहुँच पाता-घर के लोग हमें बार-बार बुलाते हैं, हम उन्हें चिट्ठियाँ भी लिखते हैं / आ रहे हैं, आ रहे हैं आर्येंगे जल्दी।

यहाँ यह कहना उचित होगा कि मंगलेश डबराल ने सामान्य जन की पीड़ा को बड़े नजदीक से देखा है, उसे महसूस किया है, यही कारण है कि यहाँ करुणा, अवसाद और निराशा के साथ - साथ कही-कहीं जो है उससे अच्छा न कर पाने का पश्चात्ताप भी देखा जा सकता है। जैसा चाहिए था वैसा

न कर पाने की छोटपटा का एक उदाहरण देखिये - आखिरकार मैंने देखा पत्नी कितनी यातना सहती है / बच्चे बावले से घूमते हैं / सगे संबंधी मुझसे बात करना बेकार समझते हैं / पिता ने सोचा अब मैं शायद कभी उन्हें चिढ़ी नहीं लिखूंगा / मुझे क्या था इस सबका पता / मैं लिखे चला जाता था कविता। इन सबके बाद भी डबराल जी की कविता में आशावादिता का एक स्वर सुनाई देता है जो व्यक्ति को नये मार्ग की तरफ अग्रसर करता है। कवि स्वयं व्यक्तिगत जीवन में भी अनेक संकटों का सामना डट कर करता रहा है। वही बुलंद आवाज़ और निडरता उसकी कविता का स्वर बन कर उभर रही है। ऐसे किसी भी संकट से जूझने के लिए कवि एकता और दृढ़ निश्चय का आह्वान करता है : चाहे जैसी भी हवा हो / यहीं हमें जलानी है अपनी आग / जैसे भी वक्त हो / इसी में खोजनी है अपनी हँसी / जब बादल नहीं होंगे / खूब तारे होंगे आसमान में / उन्हें देखते हम याद करेंगे / अपना रास्ता। कवि का यह आशावादी स्वर उसकी जिजीविषा की तरफ भी संकेत करता है। उनकी कई कवितायें ऐसी भी हैं जहाँ पूरा परिवार मिलकर ऐसे संकटों का सामना करता दिखाई देता है। सच्चाई भी यही है कि किसी संकट का सामना जिस सरलता के साथ मिलजुलकर किया जा सकता है, उतना अकेले नहीं। अकेलापन उस संकट की विषदता को और बड़ा देता है। मंगलेश डबराल की कविताओं में जो परिवार बार-बार आता है वह ऐसे संकटों का सामना करता दिखाई भी देता है - एक रात मैं घर लौटा जब बारिस थी / पिता इंतज़ार करते थे, माँ व्याकुल थी / बहनें एक साथ दूर से दौड़ी चली आई थीं / बारिस में हम सिमटकर पास-पास बैठ गये / इतने घने बारिस के नीचे हम बार-बार / प्रसन्नता के किसी किनारे तक जाकर लौट आते थे / बारिस की बूँदें आकर लालटेन का काँच / चिटकाती थी माँ बीच-बीच में उठकर देखती थी / कहीं हम भीग तो नहीं रहे बारिस में। स्वाभाविक है कि ऐसे संकट माता-पिता सहित बच्चों के लिये संकट नहीं बनते बल्कि संकटों से लड़ने के लिए हौसला आफजाई करते हैं। माँ की ममता का एक मार्मिक और पारिवारिक रिश्तों को उष्मा प्रदान करने वाला दृश्य यहाँ कवि ने उपस्थित किया है।

गाँवों के साथ-साथ मंगलेश जी ने शहरी जीवन को भी अपने काव्य का विषय बनाया है। गाँवों से शहरों में आये लोग तमाम कल्पनायें लेकर आते हैं। स्वाभाविक है कि वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति अच्छे ढंग से कर सकें, जीवन में विकास की नई ऊंचाइयों को छू सकें, आदि इस प्रकार के अनेक विचार उनके मन में रहते हैं। लेकिन, शहरों में आकर उन्हें अनेक कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ता है। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि एक नये परिवेश में अपने पैर जमाना और किसी का विश्वासपात्र बनना या किसी को अपना विश्वासपात्र बनाना, इन दोनों में कठिनाई आती है। आठों पहर मेहनत करते शहरी व्यक्ति को हर क्षण किसी से अपनेपन की दरकार लगी रहती है। इस शहरी जीवन को तकलीफों की एक और दुनिया मानते हुए मंगलेश जी लिखते हैं कि घर से बहुत दूर आये हैं हम / तकलीफों की एक और ही दुनिया में / जहाँ लगातार दौड़ते रहना होगा / दलदल में धंसेगे पैर / सूझेगा नहीं रास्ता सन्नाटे में / तब हम पुकारेंगे एक दूसरे को। इन शहरों का यथार्थ यही है कि अपने में व्यस्त आदमी काम के अतिरिक्त और किसी के सम्बन्ध में कुछ जानना भी नहीं चाहता। सभी अपनी नाक की सीध में दौड़े चले जा रहे हैं। कुछ

अपने तात्कालिक स्वार्थों के लिए यदि जुड़ते भी हैं तो अपनी व्यक्तिगत बातों के लिए वहाँ कोई स्थान नहीं है, इसी भाव को व्यक्त करती हुई डबराल जी की एक कविता देखिये - आलीशान एक घर में हम दस्तक देते हैं / जिसका पता हमें मालूम नहीं / हम खा आते हैं खाना, पी आते हैं शराब / कल की शाम तो आप बिताएंगे हमारे साथ / कहता है हाथ मिलाता हुआ आकस्मिक दोस्त / रात में कोई हमें विदा करने आता है / आते रहिये कृपया संकोच नहीं करेंगे आने में / मैं तो भूल ही गया था पूछना आपका नाम। शहरों का यह क्षणिक जीवन जहाँ हम केवल क्षणिक लाभ के लिए एक दूसरे से जुड़ते हैं, ऐसे अनेकानेक उदाहरण मंगलेश जी की कविताओं में देखे जा सकते हैं। शहरों की भागमभाग जिन्दगी का एक और उदाहरण देखिये : हम उठते हैं सुबह चार बजे / नहाते हैं / कपड़े पहनते हैं तुरत - फुरत / किसी को धक्का देकर / चढ़ते है एक बस में / रास्ते में गुलमोहर के पेड़ देखते / मुस्कराते हैं / अपनी बगल में बैठे आदमी से / पूछते हैं / अंदाज़ से कितना पैसा कमाया होगा आपने। केवल अर्थोपार्जन को ही एकमात्र अपना उद्देश्य मान लेने वाले इन शहरों में समाप्त होती मानवता और प्रेम को दूँढ़ता हुआ कवि कई जगह व्याकुल हो उठता है। वह शहर से मिटते हुए मैदानों और मानवीय संवेदना को दूँढ़ता हुआ कहता है - कहाँ हैं मेरे हिस्से के प्रेम सम्बन्ध / राशन के खाली कनस्तर रेल की पटरियाँ / और भविष्य रचने वाले रोमांच / कहाँ हैं मेरे हिस्से के कारतूस / मैं पूछता हूँ और शहर मुझ पर पहले / काला - पीला होता है फिर हरा हो जाता है / जिसमें मिटते हुए मैदान हैं और बचते हुए लोग। दिन रात भागता शहर का यह सामान्य आदमी शहर में जैसे - तैसे अपना जीवनयापन करता है और स्वयं को रोजगारयुक्त होने का भ्रम पाले रहता है। कवि ने ऐसे लोगों की पीड़ा को बड़े ही मार्मिक रूप में अभिव्यक्त किया है - बहुत बड़े इस शहर में / हमें भी मिली छोटी-सी एक जगह / थोड़ी - सी हवा एक बिस्तर / मुसीबतें याद रखने कि लिए एक डायरी।

कवि को मुसीबतों की यह डायरी और यथार्थ को ढके रहने वाली चादर शहरों में ही नहीं समाज में चारों तरफ मिलती है। बौद्धिक वर्ग भी इससे अछूता नहीं है। साहित्यकारों की दुनिया में भी वही गलाकाट स्पर्धा और छल - प्रपंच कवि को दिखाई देते हैं। इसलिए कवि स्वयं को गलत जगह पर और गलत समय पर आया हुआ आदमी मानता है - क्या मैं गलत समय पर / गलत जगह पर आया हुआ आदमी हूँ / जो कहीं पर बस से उतरा और सीधा चला आया / मुझे नहीं मालूम कि यहाँ क्या हो रहा है / किस तरह के शब्द यहाँ प्रचलित हैं / प्यारे कवियों यह सब कोहराम क्यों है। और, कवि इसी कविता की अगली पंक्तियों में इस प्रकार की सभी अभद्रताएं बंद होने की बात करता है जिसकी शुरुवात खुद से ही करें। वर्तमान में साहित्यकारों का एक बहुत बड़ा सुविधाभोगी वर्ग ऐसा भी है जो अपने अनुभव से परे की बातें लिख रहा है। अपनी जोड़तोड़ की कलाबाजी और राजनीतियों की जी हुजुरी करके कुछ पुरस्कार प्राप्त कर लेता है, या किसी लाभ के पद पर कुण्डली मारकर बैठ जाता है और अपनी ही बिरादरी के नये लोगों पर धौंस जमाते रहते हैं। ऐसे कवियों को सफल मानते हुए मंगलेश जी व्यंग्य करते हैं - प्रखर चिन्तन गद्य-पद्य रस अलंकार / अस्तित्ववाद अंतर्राष्ट्रीयता पत्राचार / चरित्र - चित्रण राजनीति दूरदर्शन कला भवन / सबमें रहता समान समीचीन

आवागमन / लगभग जादूगर हैं सफल कवि / बुलाते हैं हाज़िर होती हैं / बादियों की तरह कवितायें। ऐसी कवितायें करने वाले कवि अपने कविधर्म से विमुख होते हैं। उनके लिए कविता धर्म नहीं बल्कि सुख प्राप्ति का साधन मात्र है। इसके लिए वे सत्ता के साथ मिलकर लाभ प्राप्ति की योजनाओं में लगे रहते हैं। मंगलेश जी इस जी हुजूरी के सर्वथा विरुद्ध हैं। इसलिए ऐसे कवियों पर तंज कसते हुए कहते हैं कि - गुजर गई कई पीढ़ियाँ / सफल कवियों के इस शहर में / फिलहाल देखिये सामने के फोटो में / एक सफल नेता को विनम्र हाथ जोड़ रहा है / एक सफल कवि। साहित्यकारों का राजनीतिज्ञों के समक्ष यह नतमस्तकी प्रवृत्ति स्वतंत्र साहित्य के लिए खतरे की एक घंटी है। स्वार्थपरता की यह भावना धीरे - धीरे समाज के हर पक्ष को अपने आगोश में लेती जा रही है। जहाँ जो जैसा दिखता है वैसा है नहीं। ढोंग की चादर डाले लोभियों की इतनी बड़ी फौज आज समाज में खड़ी हो गई है कि उसमें सही और गलत की पहचान करना ही मुश्किल होने लगा है। बात चाहे धर्म के नाम पर आध्यात्मिकता की राग अलापने वाले और मोह-माया से दूर रहने का उपदेश देने वाले बाबाओं की हो या देश सेवा का प्रलाप करने वाले नेताओं की अथवा समाजसेवा का दंभ भरने वाले समाज सेवियों की, हर क्षेत्र में स्थिति एक ही है। मंगलेश जी इस यथार्थ को बहुत अच्छी तरह पहचानते हैं। इसलिए लिखते हैं कि - फर्क नहीं रहा भेड़िये और हिरन की आँखों में / बन्दर दिखता है खूंखार / रबर का बना खरगोश / दन से दाग देता पिस्तौल। राजनीति में बढ़ते आपराधिक तत्त्वों के प्रति भी कवि गंभीर है। लोकतंत्र का गला घोटने वाले ही जिस प्रकार लोकतंत्र के पहरे बनते जा रहे हैं वह समाज के लिए एक नये खतरे की घंटी है। जनसेवक का लबादा ओढ़े ऐसे राजनेताओं के प्रति कवि संकेत करते हुए कहता है कि - उसके नाखून या दांत लम्बे नहीं हैं / आँखें लाल नहीं रहतीं / बल्कि वह मुस्कराता रहता है / अक्सर अपने घर आमंत्रित करता है / हमारी ओर अपना कोमल हाथ बढ़ाता है / उसे घोर आश्चर्य है कि लोग उससे डरते हैं। निश्चित ही ऐसे तत्त्वों के विरुद्ध कलम चलाना एक साहस की बात है। लेकिन, डबराल जी का साहस तो उनकी कविताओं में उस समय ही झलकने लगा था जब देश में आपातकाल लागू हुआ था। उसी समय उन्होंने सत्ताधारियों पर व्यंग्य करते हुए लिखा था कि - साम्राज़ी के बाहर आने में अब देर नहीं है / वह अभी आयेंगी / और अपना दुर्लभ हाथ हिलाकर / सबको धन्य कर देंगी।

यहाँ यह कहना समीचीन होगा कि मंगलेश डबराल की कवितायें समाज की विकृतियों की सोनोग्राफी प्रस्तुत करती हैं, वह केवल बाहरी यथार्थ को नहीं देखतीं बल्कि उस यथार्थ के पीछे छिपे उस तत्व का भी निरीक्षण - परीक्षण करती हैं जिनकी वजह से वाह्य गतिविधियाँ संचालित हो रही हैं। हम सभी इस बात से अवगत हैं कि आज किसी भी असामाजिक तत्व के विरुद्ध बोलना सीधे-सीधे मौत को निमंत्रण देना है। लोग न चाहते हुए भी ऐसे तत्त्वों को मौन स्वीकृति प्रदान कर रहे हैं। ऐसे में इनके प्रति विरोध का भाव रखना भी अपना महत्त्व रखता है - मैंने देखा मैं बचा हूँ और साँस / ले रहा हूँ मैं क्रूरता नहीं करता / बल्कि जो निर्भय होकर क्रूरता किये जाते हैं / उनके विरुद्ध मेरी घृणा बची हुई है यह काफी है।

ठीक इसी प्रकार मंगलेश डबराल की कविताओं में विकास के नाम पर होने वाली लूट-पाट,

शोषण के विरुद्ध तीव्र आक्रोश, प्रेम के प्रति बदलता दृष्टिकोण, साम्प्रदायिक और जातिगत भेदभावों का विरोध तथा शहर से लेकर गाँव तक पैर फैलाती पूंजीवादी व्यवस्था और महानगरीय जीवन का संत्रास आदि समाज का वह सब कुछ यहाँ वर्णित है जिनसे सामान्य जनता का सामना किसी न किसी रूप में आये दिन होता रहता है।

अस्तु।

सहायक प्राध्यापक एवं शोध निदेशक
हिन्दी विभाग
बिड़ला महाविद्यालय, कल्याण (पश्चिम)
थाने (मुंबई-महाराष्ट्र)

आकलन

● प्रा. दिनेश पाठक

ग्लोबल समय का सच और 'नये युग में शत्रु'

मंगलेश डबराल हिंदी के उन कुछ प्रतिबद्ध रचनाकारों में हैं जो अपने समय की नब्ज को पहचानते हैं और बिना किसी लाभ-लोभ व भय को स्वीकार किए उस पूरी ईमानदारी से अपनी कविताओं में व्यक्त करते हैं। समय और समाज की गहरी समझ और उसे पूरी प्रतिबद्धता के साथ व्यक्त करने की तैयारी मंगलेश की कविताओं को एक क्लासिक उठाव देती है। ढेर सारी कविताओं के बीच भी उनकी कविता पहचानी जा सकती है और उसके स्वर के वैशिष्ट्य को आसानी से समझा जा सकता है। 'पहाड़ पर लालटेन', 'घर का रास्ता', 'हम जो देखते हैं' 'एक बार आयोबा', 'कवि का अकेलापन' के बाद 'नए युग में शत्रु' मंगलेश की रचनाओं में एक विशिष्ट स्थान रखता है। इस संकलन की कविताएं ग्लोबल होते समय और समाज में सच से टकराती हैं। इस चमकदार लगनेवाले समय के पीछे छिपे हुए गहरे अंधकार के दृश्यों को हमारे सामने पूरी शिद्दत के सच उघाड़ती हैं। सत्ता व पूंजी के खेल के पीछे की सिसकियों, मजबूरियों व लाचारियों के सच को हमारे सामने रखती हैं। हमारे अपने समय के अन्तर्विरोधों की सच्चाई से हमें रु-ब-रु करवी हैं। 'नये युग में शत्रु' की कविताएं ये कविताएं नए युग के शत्रुओं का शिनाख्त करती हुई उन्हें उनके वास्तविक चरित्र के साथ हमारे सामने लाती हैं। बाजार की शक्तियाँ जो ऊपरी तौर पर लगभग करती हुई अपनी ओर हमें खींचती हैं, असल में उनके अंदर केवल आभासी चमक होती है। वह आग नहीं होती जो हमारे अंदर से जिंदगी को जीने और संघर्षों से टकराने की ऊर्जा दे सके। ऐसी आभासी रोशनी जिंदगी के गणित को मायालोक के अबूझ में उलझा देती है। इससे सतर्क रहने की आवश्यकता है, इसी सच को रेखांकित करता हुआ कवि 'टॉर्च' कविता में कहता है-

एक सुबह मेरी पड़ोस की एक दादी ने पिता से कहा

बेटा इस मशीन से चूलहा जलाने के लिए थोड़ी-सी आग दे दो

पिताने हंस कर कहा-चाची इसमें आग नहीं होती सिर्फ उजाला होता है

दादी ने कहा-उजाले में थोड़ा आग होती तो कितना अच्छा था। (प्र. क्र. ३२)

कविता की ये पंक्तियाँ हमारे समाज में उस सच को हमारे सामने लाती हैं जहाँ रोशनी की चकाचौंध तो है किंतु उस रोशनी में घर के चूल्हे को जलानेवाली आग नहीं है। भला ऐसी रोशनी किस काम की जो आंखों को चौंधिया दे लेकिन घर के चूल्हे को जला सकने की ताकत न रखे। ऐसी जगमगाहट से भला गरीब को क्या फायदा। उसके लिए जिंदगी का गणित अब और उलझ गया है। यह हमारे समय की सबसे बड़ी बिड़बना है। इस विडंबना तक कवि की दृष्टि पहुंचती है और उसे वह कविता में हमारे सामने बिना किसी लाग-लपेट में रखता है। आगे खिसकते हुए समय के साथ दुनिया बहुत बदली है लेकिन यह बदलती दुनिया और मनुष्य समाज में व्यापक हिंदो को साधनेवाला बदलाव नहीं है। दुनिया में पूंजी का वर्चस्व बढ़ा है और बढ़ा है साहस इन पूंजीपतियों व दलालों का जिन्होंने अपने लाभ को कई-कई गुना बढ़ाने के लिए विचार संस्कृति को नष्ट कर दिया है और हत्यारों की संस्कृति को नियमित करने व उसके फलने-फूलने की पर्याप्त व्यवस्था कर रखी है। कवि इसी यथार्थ को हमारे सामने- 'यथार्थ इन दिनों' कविता में रखते हुए कहता है-

एक तेज हवा चल रही है

और विचार सपनों स्मृतियों को

फटे हुए कागजों की तरह उड़ा रही है

एक अंधेरी सी गली सी चीज़

हिंस्र पक्षुओं दो भरी हुई रात चारों ओर इकट्ठा हो रही है

एक लुटेरा, एक हत्यारा, एक दलाल

आसमानों, पहाड़ों, मैदानों को लाँघता हुआ जा रहा है

उसके हाथ धरती के मर्म को दबोचने के लिए बढ़ रहे हैं (पृ. क्र. २१)

इस पंक्तियों को पढ़ते हुए 'मुक्ति बोध' याद आ जाते हैं और याद आ जाती है 'अंधेरे में' की वे पंक्तियाँ जो पूंजी व सत्ता के भयानक खेल का पहली बार हिंदी में मुखर उद्घाटन इस आशा साथ करती हैं कि संभवतः आनेवाले दिनों में जनता की अवस्था में कुछ सकारात्मक बदलाव हो। बदलाव हुआ भी लेकिन बदलाव सकारात्मक होने के बदले नकारात्मक दिशा में अधिक हुआ। रहे-सहे विचार भी खत्म होने में कगार पर हैं और लुटेरे, दलाल व हत्यारे अब रात में अंधेरे में नहीं मिलते बल्कि दिन दोपहर ही अपने दरबारों को सजाकर अपनी शक्ति का प्रदर्शन कर रहे हैं। और जनता उनके नंगे-नाच को झेलने और दुख भोगने को मजबूर है। यथार्थ अब अपनी पूरी संजीदगी के साथ हमारे सामने है और ज्यादा नुचा-खुचा लहू लहाना। लेकिन हम इस यथार्थ से मुंह चुराने में लगे हुए हैं, इसी कविता में मंगलेश आगे कहते हैं-

यथार्थ इन दिनों बहुत ज्यादा यथार्थ है

उसके शरीर से ज्यादा दिखाई दे रहा है उसका रक्त। इस स्थिति के लिए जिम्मेदार देश का शासक वर्ग जो पहले से ज्यादा शांति और गैर जिम्मेदार है। उसे देश की गरीब जनता केवल चुनाव के दिनों में याद आती है। उसके जीने मरने से उसे कुछ भी लेना-देना नहीं है। वे लखपतियों, करोड़पतियों और अरबपतियों की सेवा में लगे हुए हैं, उनके लिए सेवाएं व सहूलियतें जुटा रहे हैं। उनकी चिंता यह है कि विदेशी-निवेश कहाँ-कहाँ से आए, ज्यादा से ज्यादा आए। देश की कौन कौन सी चीजों को निलामी में रखकर विदेशी पूंजीनिवेश को आकर्षित किया जा सके? और देश के ज्यादातर लोग विदेशों में बस जाते हैं तो वे अपनी रही-सही जिम्मेदारी से भी बच जाते हैं। मंगलेश इस सच्चाई को हमारे सामने लाते हुए 'हमारे शासक' नामक कविता में कहते हैं-

हमारे शासक गरीबों के बारे में चुप रहते हैं
शोषण के बारे में कुछ नहीं बोलते
अन्याय को देखते ही वे मुंह फेर लेते हैं

दुर्बल प्रजा उन्हें अच्छी नहीं लगती

हमारे शासक गरीबों के बारे में सकते हैं कि वे हमारी समस्या हैं

समस्या दूर करने के लिए हमारे शासक

अमीरों को गले लगाते रहते हैं

जो लखपति रातोंरात कोड़पति, जो करोड़पति रातोंरात

अरबपति बन जाते हैं, उनका वे और भी सम्मान करते हैं। (पृ. क्र. २४)

सत्ता के सुख को भोगकर मदमस्त हुए सत्ताधीशों और पूँजीपतियों की तुलना कवि मिथकीय राक्षसों से करता हुआ उन्हीं से उनकी नृशंसता पर प्रश्न करता है, क्योंकि वे ही हैं जो अपने दुष्कर्माँ का सच्चा लेखा-जोखा जानते हैं, दूसरों की औकात क्या जो उनकी सच्चाई को जान सके और उसे सार्वजनिक रूप से बयान कर सके, कवि इन आधुनिक राक्षसों की अंतर्आत्मा को झिंझोड़ने की कोशिश करता है, उससे उत्तर पाना चाहता है, जानना चाहता है कि इतने दुष्कर्म करने के बाद भी भला ये नरपशु रात को चैन की नींद कैसे सो लेते हैं? उसे कहीं से कोई उत्तर नहीं मिलता, अंततः वह खुद इस बात को स्वीकार कर लेता है कि इन आधुनिक राक्षसों को अपने किसी किए पर कभी पछतावा नहीं होता और ये ही वे लोग हैं जो आज के इस असुरक्षित हत्यारे समय में भी पूरे चैन के साथ गाढ़ी नींद में सोते हैं, क्योंकि दूसरों के हिस्से की नींद और चैन पर इन्होंने डाका डाल रखा है- 'राक्षसों क्या तुम' कविता में कवि इसी सत्य को रेखांकित करता हुआ कहता है-

राक्षसो, क्या दूसरों की तरह तुम्हें भी चुभते हैं

तुम्हारे सींग, नाखून, दांत
क्या तुम्हें सचमुच नींद आती है
क्या दिनभर के तुम्हारे करतब सारी रात तुम्हारा पीछा करते हैं
दिन भर के तुम्हारे हत्यारे शब्द क्या तुम्हारे कान में चिल्लाते हैं
और तुम्हारा विष फिर से घुसने लगता है तुम्हारे रक्त में
या फिर यह समय ही पूरा तुम्हारा है
जहां तुम ही सोते हो सबसे गहरी नींद (पृ. क्र. ५८)

सांप्रदायिक उभार व राजनीति की कुटिलता पर चोट करती हुई कवि की 'गुजरात के मृतक का बयान' एक असाधारण कविता है। मृतक अपने मारनेवाले से सवाल करता है कि उसे भला किस अपराध के लिए मारा गया? उसे और उस के जैसे सैकड़ों निरपराध सामान्य मेहनकश लोग सिर्फ और सिर्फ इसलिए मार दिये गये ताकि कुछ लोगों की राजनीतिक दुकान चलती रहे और वे आनेवाले दिनों में उसका अच्छा फायदा ले सकें। मृतक कहता है-

और मुझे मारा गया
जैसे एक साथ बहुत से दूसरे लोग मारे जा रहे हों
मेरे जीवित होने का कोई बड़ा मकसद नहीं था
लेकिन मुझे इस तरह मारा गया
जैसे मुझे मारना कोई बड़ा मकसद हो (पृ. क्र. ५३)

कविता की पंक्तियों राजनीति के सांप्रदायिक उभार की तरफ संकेत करती है। गुजरात के मृतक का यह बयान केवल गुजरात के मृतक का बयान नहीं है बल्कि वह उन सभी लोगों का बयान है जो इस राजनीतिक पड्यंत्र का शिकार होकर देशभर के दंगों में मारे गये। ये मारे गये लोग किसी के दुश्मन न थे और न किसी की कोई व्यक्तिगत उनसे दुश्मनी थी। इन्हें तो शिकार बनाया गया ताकि आनेवाले दिनों में राजनीति की दुकान को चलाए रखने के लिए आवश्यक ऊर्जा मिल सके और सत्ता व वर्चस्व में खेल को ज्यादा सलीके से खेला जा सके। 'अंजार' कविता भी इसी सच को बयाँ करती है। राजनीति का यहाँ खतरनाक सांप्रदायिक उभार हमारे युग का वह शत्रु है जो नया तो नहीं है लेकिन छिपा हुआ है और इस बार उसने अपने तौर-तरीकों को बदलकर अपनी पहचान को कई तर्कों और रूपों के अंदर छिपा लिया है। इस सत्य को जानने व पहचानने की जरूरत है। जिसकी तरफ से आज भी सामान्य जन बेखबर है।

सांप्रदायिक भ्रष्ट राजनीति के अलावा कवि इस युग के जिन नए शत्रुओं की तरफ संकेत करता

है- वे हैं बाजारवाद, उपभोक्तावाद, भूमंडलीय वर्चस्व वाला पूँजीवाद और इस भूमंडलीय पूँजीवाद के कारण पनपी वह अपसंस्कृति जिसे अब की युवा पीढ़ी बिना किसी जाँच पड़ताल और विवेक का प्रयोग किए बिना ढो रही है। 'नये युवा में शत्रु' कविता में कवि इस त्रासदी को उद्घाटित करता हुआ कहता है-

— हमारा शत्रु किसी एक जगह नहीं रहता
लेकिन हम जहाँ भी जाते हैं, पता चलता है वह और कहीं रहता है
अपनी पहचान को उसने हर जगह घुला मिला दिया है
जो लोग ऊंची जगहों में भव्य कुर्सियों पर बैठे हुए दिखते हैं
वे शत्रु नहीं सिर्फ उनके कारिंदे हैं
जिन्हें वह भर्ती करता रहता है
ताकि हम उसे खोजने की कोशिश न करें
वह अपने को कम्प्यूटरों, टेलीविजनों, मोबाइलों
आइ पैड़ों की जटिल आँतों के भीतर फैला देता है,
अचानक किसी महंगी गाड़ी के भीतर उसकी छाया नजर आती है
लेकिन वहां पहुँचने पर दिखता है वह वहाँ नहीं है। (प्र. क्र. १२)

किसी को न दिखाई देता हुआ भी नये युग का सर्वव्यापी पूँजीवाद अब हर जगह व्याप्त है। वह किसी से मिलता नहीं। उसे किसी ने देखा नहीं लेकिन वह हम सभी की जिंदगियों में शामिल है, बल्कि वह हमारे जीवन को नियंत्रित कर रहा है। हम हर जगह उसकी उपस्थिति को पाते हैं, उसकी गिरफ्त में हैं, लेकिन हमें यह पता भी नहीं चलता कि जिसकी गोद में हम बैठे मगन हो रहे हैं, जिसकी चमक और खनन के दीवाने होते चले जा रहे हैं 'ये दिल माँग मोर' असल में वह अप्रच्छन्न ताकत हमारे गले को धीरे धीरे दबा रही है और एक दिन वह हमारा दम निकाल लेगी, हमारे हिस्से के ऑक्सीजन को पी जाएगी। इस सर्व व्यापी पूँजीवाद के गर्भ से बाजारवाद व उपभोक्तावाद विकसित हुए हैं। आम आदमी जो पहले संतोष को सुख और मितव्ययता को अपने भविष्य की बचत का आधार मानता था अब उसे 'ये दिल माँग मोर' का पाठ पढ़ाकर असंतोषी बनाया जा रहा है। तरह तरह के रंगीन व भ्रामक विज्ञापनों के माध्यम से उसके अंदर उपभोग की आंधी को जगाया जा रहा है और इस उपभोग की गति को बढ़ाने के लिए उसे सस्ते कर्ज, व्यापार 'एक पर एक मुक्त' व क्रेडिट कार्ड के फायदों का पाठ पढ़ाया जा रहा है। इस स्थिति पर व्यंग्य करते हुए कवि लिखता है-

हमारे शत्रु के पास बहुत से फोन नंबर हैं, ढेरों मोबाइल,
वह लोगों को सूचना देता है, आप जीत गये हैं
एक विशाल प्रतियोगिता में आपका नाम निकल आया है।
आप बहुत सारा कर्ज ले सकते हैं, बहुत सा सामान खरीद सकते हैं
एक अकल्पनीय उपहार आपका इंतजार कर रहा है
लेकिन पलट कर फोन करने पर कुछ सुनाई नहीं देता। (पृ. क्र. १५)

इस तरह छिपा हुआ पूंजीवाद, नागरिकों को उपभोक्ता बनने की ओर प्रेरित करता है, प्रेरित कहना भी सटीक न होगा बल्कि वह उन्हें बाजार की ओर बार-बार ढकेलता है, एक उन्माद पैदा करता है और उस उन्माद को पूरा करने के रास्ते पर खतरनाक साधन मुहैया कराना है, जिसकी गिरफ्त में पड़कर मध्य व निम्नमध्यवर्ग अपना सब कुछ गँवा बैठता है और जब वह इस भयंकर मकड़जाल को समझ पाता है तब तक बहुत देर हो चुकी होती है। वह अपने शत्रु का गला घोट देना चाहता है पर फिर भी वह उसे दिखाई नहीं देता। इस तथ्य के साक्ष्य हमें आजकल अखबारों और स्वचलित चैनलों पर मिलने लगे हैं। नगरों में बढ़ती गरीबी व गांवों में किसानों की आत्महत्या को इस संदर्भ से जोड़कर देखें बिना भूमंडलीय पूंजीवाद के वर्तमान रूप का सच हम नहीं समझ सकते। कवि आनेवाले भयंकर समय की आहट से परिचित है। वह जानता है कि आनेवाले दिनों में सबकुछ बेचकर लाभ कमानेवाले सौदागर प्रकृति के हवा-पानी और प्रकाश जैसे सर्वसुलभ संसाधनों को भी बेच डालेंगे तब बेचारा कवि कहाँ जाएगा। अपनी इस चिंता को प्रकट करता हुआ कवि 'घटती हुई ऑक्सीजन' कविता में कहता है -

— जगह जगह प्राणवायु के मांगनेवाले बढ़ रहे हैं

उन्हें बेचनेवाले सौदागरों की तादाद बढ़ रही है

भाषा में ऑक्सीजन लगातार घट रही है

उखड़ रही है शब्दों की सांस (पृ. क्र. १३)

इस स्थिति में एक और दुख की बात यह है कि इस लुटने में हम मजा पा रहे हैं। हम स्थितियों का विरोध करने की बात सोचते तक नहीं उल्टे हम इस मानसिक गुलामी में अब अपना सुख तलाशने लगे हैं। कवि के लिए यह स्थिति और भी त्रासद है क्योंकि वह देखता है कि इस मानसिकता में वे सारे मूल्य और स्थितियाँ नष्ट हो जाएँगी जिन्हें सदियों की मेहनत व त्याग करके हमारी बुजुर्ग पीढ़ी ने बनाया था इसीलिए वह गुलामी कविता में कहता है-

— नये गुलाम इतने मजे में दिखते हैं

कि उन्हें किसी दुख के बारे में बताना कठिन लगता है
और वे संघर्ष जिनके बारे में सोचा गया था कि खत्म हो चुके हैं
फिर से वहीं चले आते हैं जहां से शुरू हुए थे
वह सब जिसे बेहतर हो चुका मान लिया गया था
पहले से खराब दिखता है।

और यह भी तय है कि इस बार लड़ना ज्यादा कठिन है। (पृ. क्र. २६-२७)

असल में यह दुख केवल कवि का दुख नहीं है बल्कि उस हर विवेकवान व्यक्ति का दुख है जो पूँजी के खेल व वर्चस्व की रणनीति को समझता है, जो जानता है कि आनेवाले दिनों में हम फिर वर्चस्ववादी ताकतों के गुलाम हो जाएंगे और इस बार इस गुलामी का प्रतिरोध कर पाना पहले की तुलना में बहुत-बहुत कठिन और कष्टप्रद हो जाएगा क्योंकि इस बार हम मानसिक रूप से गुलाम होंगे और मानसिक गुलामी से, जिसे खुशी-खुशी हमने स्वीकार कर लिया हो, मुक्ति पाना बेहद कठिन व त्रासद होगा। क्योंकि आग का शत्रु 'कुशल प्रबंधन' के गुण को जानता है, जिससे वह हर स्थिति पर अपना नियंत्रण जमा लेता है और अन्याय का पता भी हमें नहीं चलने देता कवि 'कुशल प्रबंधन' कविता में नए युग के शत्रु की इस शांति प्रबंधन शक्ति का उद्घाटन करते हुए कहता है-

अन्याय का पता न चलने देना अन्याय का कुशल प्रबंधन है

लूट का न दिखना लूट की कला है

दुनिया में कुछ भी अच्छा या बुरा नहीं है

बल्कि सबकुछ अत्यंत प्रबंधनीय है

बशर्ते जो ठीक है ठीक से प्रबंधनीय हो

बशर्ते एक व्यवस्था के बिगड़ते ही

हम तुरंत दूसरी व्यवस्था का प्रबंधन कर सकें

एक पृथ्वी के बुझने पर तुरंत हाजिर हो सके दूसरी पृथ्वी (पृ. क्र. ४४/४५)

इस तरह अपने समय व समाज के नए शत्रुओं की आहटों को मंगलेश जी अच्छी तरह से पहचानते हैं और हमें इस खतरे के खिलाफ सजग करते हैं। आज के लाभ लोभ के समय में जब वृद्धि भी गिरवी रखी जा चुकी है तब ऐसे में मंगलेश की कविताएं हमें आश्वस्त करती हैं कि विचार व वैचारिक प्रतिबद्धता को नहीं मारा जा सकता।

अध्यक्ष, हिंदी विभाग

एस.आइ.ई.एस. महाविद्यालय

सायन (प.) मुंबई-४०००२२.

*With Best Compliments
from :*

Vishakha Thakur

902, Avon,
Hiranandani Estate
Patlipada,
Ghodbunder Road,
Thane (West)
Pin : 400 607

समीचीन

जनवरी-जून 2018

81

आकलन

● डॉ. उमेश चंद्र

मंगलेश डबराल की कविता की जमीन

आज़ादी के बाद अपराधी तत्वों से साठगाँठ कर सत्ता पाने की लालसा ने सत्ता के केंद्रीय चरित्र में परिवर्तन ला दिया। अब अपराधी और अपराध व्यवस्था के अंग बनने लगे थे। आठवें दशक में मोहभंग, सत्ता का केंद्रीय कारण, भारतीय राजनीति में मूल्यहीन स्वार्थी राजनेताओं के प्रवेश आदि ने जनसेवा के नाम पर भारतीय जनता को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से भयानक तौर पर नुकसान पहुंचाया है। समकालीन कवियों का लक्ष्य एक ओर स्वार्थ सिद्धि में लिप्त सत्तालोलुप नेताओं की असलियत का पर्दाफ़ाश, विसंगतियों पर प्रहार, कुशासन का निरावरण कर राजनैतिक प्रदूषण को दूर करना रहा है तो दूसरी ओर जन चेतना पैदा कर जन जागरण और जन समर्थन को गति देना भी रहा है।

पत्रकारिता और कविता दोनों का कुशलता से निर्वाह करने वाले मंगलेश डबराल आखिर पत्रकारिता जैसी धारदार विधा से क्यों कविता की ओर मुड़े? यह सवाल जेहन में बार-बार घूमता है। इस बात का जवाब यह हो सकता है कि शायद कविता ही वह अस्त्र हो सकती है जिसकी पैनी धार से भ्रष्ट व्यवस्था को आईना दिखाते हुए सुधारा जा सकता है। हमें पत्रकार की कलम और कवि की कलम को अलग कर देखना होगा। मंगलेश डबराल का पत्रकार जितना मुखर है उससे कम मुखर मंगलेश जी का कवि नहीं है। मंगलेश डबराल कविता लिखने के व्यक्तिगत प्रभावों और रचना प्रक्रिया को बड़ी बारीकी से स्पष्ट करते हैं, अक्सर कहा जाता है, अमुक तो कवि है, वह अपनी ही दुनिया में खोया रहता है। दूसरों से हिलता-मिलता नहीं। या फिर मेरे जैसे किसी कवि से, जो अपने अन्य कामों में व्यस्त रहता है, लोग अक्सर पूछते हैं, इतनी व्यस्तता के बीच कविता लिखने का समय कैसे निकाल लेते हो? मंगलेश अपनी कविताओं में 'विफल' या अलक्षित इंसान को उसके हाशिये से उठाकर बहस और उल्लेख के बीचोबीच लाते हैं। ऐसा नहीं है कि मंगलेश का कवि 'सफलता' के सामने कुंठित, ईप्सालु अथवा आत्मदयाग्रस्त है, बल्कि उसने 'कामयाबी' के दोज़ख को देख लिया है और वह शैतान को अपनी आत्मा बेचने से इनकार करता है।

लोकतांत्रिक प्रक्रिया के बीच छद्म समय के क्रूर दाँते से कटते भारत के आम आदमी का बिम्ब हमें विचार करने के लिए मजबूर करता है कि कब तक आम आदमी को मूलभूत सुविधाओं के लिए

क्रमशः क्षीण-क्षीण होकर मरना पड़ेगा। कविता अपने समय की आवाज है तो दूसरी ओर आने वाले भारत की ओर संकेत भी है। द्रष्टव्य है कि कविता, उस आदमीको जिसने उसे लिखा है, एक बेहतर इंसान बनाती है। और नहीं बनाती है तो वह कविता नहीं है। कविता क्या, कोई भी रचना नहीं है। हर रचना उसे हमेशा एक बेहतर व्यक्ति बनाती है जिसने उसको लिखा है। रचना कम-से-कम उस व्यक्ति को जो उसे कर रहा है, एक बेहतर इंसान जरूर बनाती है, क्योंकि पहले तो वह इन शर्तों का अनजाने पालन करता है कि उसके मन में द्वेष नहीं है। क्रोध हो सकता है, एक तरह की छटपटाहट हो सकती है, मजबूरी हो सकती है, लेकिन हताशा नहीं है। दूसरे कदम पर वह एक बेहतर इंसान इसीलिए बनता है कि हर रचना अपने व्यक्तित्व को बिखरने से बचाने का प्रयत्न है। मंगलेश की इन विचलित कर देने वाली कविताओं में गहरी, प्रतिबद्ध, अनुभूत करुणा है, जिसमें दैन्य, नैराश्य या पलायन कहीं नहीं है। करुणा, स्नेह, मानवीयता, प्रतिबद्धता उसे आप किसी भी ऐसे नाम से पुकारें, लेकिन वही जज़्बा मंगलेश की कविता में अपने गांव, अंचल, वहां के लोगों, अपने कुटुंब और पैतृक घर और अंत में अपनी निजी गिरस्थी के अतीत और वर्तमान, स्मृतियों और स्वप्नों, आकांक्षाओं और वस्तु स्थितियों से ही उपजता है। उनकी सर्जना का पहला और 'अंतिम प्रारूप' वही है।

मंगलेश कविता को सिर्फ शब्दों का आडंबर बना देने के पक्ष में कतई नहीं है। उनका मानना है कि कविता को जीवंतता से भरा होना चाहिए। उसमें जीवन का प्रवाह होना चाहिए। आज की हिंदी कविता में मंगलेश डबराल की कलात्मक और नैतिक अद्वितीयता इस बात में भी है कि अपनी शीर्ष उपस्थिति और स्वीकृति के बावजूद उनकी आवाज़ में उन्हीं के 'संगतकार' की तरह एक हिचक है, अपने स्वर को ऊंचा न उठाने की कोशिश है, लेकिन हम जानते हैं वे ऐसे विरल सर्जक हैं जिनकी कविताओं में उनकी आवाज़ें भी बोलती-गूंजती हैं जिनकी आवाज़ों की सुनवाई कम होती है। **मैंने शहर को देखा और मुस्कराया वहाँ कोई कैसे रह सकता है यह जानने मैं गया और वापस न आया।** शहर मंगलेश की दृष्टि में शहर हमारे अस्तित्व का अपहरण कर लेता है। दरअसल हमारा शत्रु कोई व्यक्ति नहीं बल्कि एक विचारधारा, एक दर्शन है। उसका कोई एक प्रतिनिधि नहीं कि हम उसकी ओर संकेत कर कह दें की वह है हमारा सबसे बड़ा शत्रु। इस विसंगतिपूर्ण विचारधारा के असंख्य प्रतिनिधि हैं जो अनेकानेक रूपों में सक्रिय हैं। वे हमारे सबसे बड़े हितैषी के रूप में दिखाई पड़ते हैं। हमें चुनौती न देकर हमारा भरपूर इस्तेमाल कर रहे हैं। हमारा उपयोग किस तरह किया जाता है इस बात का सीधे-सीधे पता भी नहीं चलता मंगलेश लिखते हैं:

हमारा शत्रु कभी हमसे नहीं मिलता। सामने नहीं आता हमें ललकारता नहीं हालांकि उसके आने-जाने की आहट हमेशा बनी हुई रहती है कभी-कभी उसका संदेश आता है कि अब कहीं शत्रु नहीं है हम सब एक-दूसरे के मित्र हैं। नये युग के शत्रु जब से पूंजी निवेश बढ़ा है, हमारे शासक वर्ग के सामने समृद्धि का अथाह स्रोत खुल गया है। आखिर क्या वजह है कि मंत्रियों और सांसदों की निजी संपत्ति रातों रात बढ़ती चली जा रही है। भ्रष्टाचार के जो बड़े-बड़े मामले पिछले कुछ वर्षों में सामने आए हैं वे निश्चय ही उदारीकरण और भूमंडलीकरण की देन है। इन्होंने हमारे शासक वर्ग को

लालची, लंपट और गैर जवाबदेह बना दिया है। अपने स्वार्थ में अंधे हमारे शासक वर्ग ने विदेशी पूंजी की राह आसान बनाने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र को धीरे-धीरे नष्ट किया और निजीकरण की राह आसान की।

विश्व पूंजी के पैरोकारों और उनके दलाल शासक वर्ग ने डिवेलपमेंट का नारा दिया है जिसके तहत बड़ी-बड़ी परियोजनाएँ बन रही हैं और जिनके लिए आदिवासियों और गरीब किसानों को उनकी जमीन, जंगल और पहाड़ों से बेदखल किया जा रहा है। कहीं-कहीं तो सीधे पुलिस और गुंडों की मिली भगत से उन्हें उनकी जमीन से विस्थापित किया गया है। कभी कभी ऐसा भी होता है कि आदिवासी समुदाय के हित संरक्षण के लिए काम करने वाली सामाजिक संस्थाएँ जो आदिवासी समाज के हित में कार्य करती हैं उनकी नियत में भी खोत होता है। समाज सेवा करने निकले समाजसेवी कुछ ग्रामीण भागों में कार्य करने वाले अफसर, ठेकेदार, बिचौलिये, आदिवासी श्रम एवं स्त्री का शोषण करने से नहीं चूकते। इन्हें प्रायः अशिक्षा, भय तथा भोलेपन का शिकार होना पड़ता है। कभी जंगल के अधिकारी, लेखापाल, सिपाही तो कभी राजनेता एवं ठेकेदार का शिकार होना पड़ता है। हालांकि कई जगहों पर आदिवासियों को लॉलीपॉप भी थमाये गए हैं। उन्हें वैकल्पिक जमीन या घर देने की कोशिश की गई है। पर ज्यादातर के हिस्से में कुछ नहीं आया है। जिन राज्यों में खनिज हैं वे ज्यादा गरीब हुए हैं। उनके संसाधनों का लाभ दूसरे राज्यों को और मुट्ठी भर लोगों को पहुंचा। देश भर में विस्थापितों की एक फौज तैयार हो गई। यह अलग बात है कि यह न तो मीडिया की चर्चा का विषय है न ही मध्यवर्ग का। गाँवों का देश भारत आज अपने मूल उत्स से षड्यंत्र के तहत उजाड़ा जा रहा है। जहाँ उसका मूल स्वरूप, भाषा-वाणी, रहन-सहन, खानपान तो बाद में गायब होगा उसके पहले कुछ साधन या डर दिखाकर अस्मत् लूट ली जा रही है। वन संरक्षण के नाम पर हम जंगल के मूल निवासी आदिवासियों के मालिकाना हक समाप्त करने पर तुले हैं। गैट समझौता, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार नीति, पेटेंट जैसे कानूनी अधिकार इस भूमंडलीकरण के युग में आदिवासियों को गुलाम बनाने का कार्य कर रहे हैं। मंगलेश लिखते हैं-यह साफ है कि उससे कुछ छीन लिया गया है। उसे अपने अरण्य से दूर ले जाया जा रहा है। अब पूंजी के इर्द-गिर्द सभी समीकरण बनने बिगड़ने लगे। धनबल से संचालित, आत्मकेंद्रित, सुविधाभोगी व्यक्ति को परिवार के महत्व तथा उसके टूटने से उत्पन्न भयंकर परिणामों से अवगत कराना तथा घर संसार की अहमियत का अहसास अति आवश्यक समझा गया। मनुष्य के भीतर की मनुष्यता की तलाश समकालीन कविता की तलाश है। जिसके केंद्र में परिवार नाम की संस्था और घर ही है। अब रिश्ते नाते सम्बन्धी तथा समाज के बीच सम्पूर्ण मुक्ति का मन्त्र बनकर उभरता है। 'नया बैंक' पूंजीवाद का एक रूपक है। कवि एटीएम की चर्चा करते हुए उसके भीतर के ठंडेपन का खासतौर से उल्लेख करता है। ठंडक दरअसल रिश्तों की भी है। पहले बैंक में ग्राहक-कर्मचारियों का एक रिश्ता रहता था पर अब दोनों के बीच कोई संवाद नहीं है। आदमी और मशीन आमने-सामने है, जिसका कोई संबंध नहीं बन पाता। रिश्ता है भी तो कोड के जरिए, अंकों के जरिए। अंकों के इस मकडजाल में आदमी उलझ-सा गया है। वह अपने को अकेला और असहाय महसूस करता है। और नय नया

बैंक करता क्या है? कवि के शब्दों में वह अपने आसपास ठेलों पर सस्ती चीजें बेचने वालों को भगा देता है और वहां कारों के लिए कर्ज देने वाली गुमटियां खोल देता है। एक बैंक के कामकाज के जरिए कवि ने आर्थिक नीति के खतरनाक लक्ष्यों की ओर इशारा किया है। भूमंडलीकरण छोटे-मोटे उद्योगों पर प्रहार करता है और पारंपरिक आर्थिक ढांचे को नष्ट कर डालता है। भारत में यह प्रक्रिया निरंतर तेज हो रही है। 'साहित्य और जिज्ञासा' निबंध में मुक्तिबोध लिखते हैं—कहा जाता है कि साहित्य हृदय की भावनाओं से उत्पन्न होता है। इसमें यह और जोड़ देना चाहिए कि भावना जिज्ञासा की पैठ के बिना, उसके द्वारा की जानेवाली तटस्थ तथा तीव्र खोज के बिना ऊंचा साहित्य उत्पन्न नहीं कर सकती। ध्यान में रखने की बात यह है कि भावना, जिसके प्रति वह है उसके प्रति आकर्षण या विरोध के (बिना) काम नहीं कर सकती। अर्थात्, वह पक्ष या विपक्ष में ही काम कर सकती है। किंतु जिज्ञासा के द्वारा की गई यथार्थवादी खोज से प्राप्त ज्ञान के आधार पर, और उसकी सहायता से, चलनेवाली भावना अलग होती है। वह एक चरित्र या स्थिति के विश्लेषण के टुकड़ों को फिर से जोड़कर समन्वय और सामान्यीकरण करती है। किंतु वह इतना करके ही चुप नहीं रहती, चरित्र के विकास के मूल कारणों की खोज भी करती है, प्रश्नों के कारणों का अनुसंधान और उनका चित्रण करती है और इस दृष्टि से वह चित्रण और स्थिति दोनों के प्रति अधिक न्याय करती है। नए बाजार में प्रबंधन को सबसे अहम माना गया है और यह अवधारणा प्रस्तुत की है कि मैनेजमेंट के जरिए कुछ भी संभव है। यह माना जाता है कि कुशल प्रबंधन से किसी भी उत्पाद को बेचा जा सकता है। वैश्वीकरण के पैरोकार पूरे जीवन को ही प्रबंधन साबित करने पर लगे हुए हैं। कवि ने इस पर कटाक्ष करते हुए लिखा है:

अन्याय का पता न चलने देना अन्याय का कुशल प्रबंधन है। लूट का न दिखना लूट की कला है। दुनिया में कुछ भी अच्छा या बुरा नहीं है बल्कि सब कुछ अत्यंत प्रबंधनीय है। कुशल प्रबंधन में मनुष्य और कुछ नहीं बस एक उपभोक्ता है और उपभोग ही जीवन का चरम लक्ष्य है। समाज का एक वर्ग धीरे-धीरे इस तरह की मानसिकता का गुलाम हो गया है। वह जीवन के सारे सरोकारों से कट गया है। जहाँ जीवन नहीं, बाजार की सत्ता चलती है। बाजार के चकाचौंध शोर-शराबे में डूबे रहना चाहता है क्योंकि इससे परे देखने की क्षमता ही खत्म हो गई है। मंगलेश डबराल ऐसे लोगों को नयी सदी के बाजार का नया गुलाम कहते हैं।

नये गुलाम इतने मजे में दिखते हैं कि उन्हीं किसी दुख के बारे में बताना कठिन लगता है और वे संघर्ष जिनके बारे में सोचा गया था कि खत्म हो चुके हैं फिर से वहीं चले आते हैं जहां से शुरू हुए थे। वह सब जिसे बेहतर हो चुका मान लिया गया था पहले से खराब दिखता है और यह भी तय है कि इस बार लड़ना ज्यादा कठिन है। गुलाम वैश्विक दृष्टि और बाजार ने सामाजिक मूल्यों पर गहरा हमला किया है। आज सबसे बड़ा मूल्य है संपन्न होना। संपन्नता कैसे आती है, इससे कोई मतलब नहीं है। बस जिसके पास संपन्नता है, वह सफल माना जाता है। आज उसी संपन्न वर्ग के हाथ में सूचनाओं के सारे माध्यम हैं। इसलिए आज मीडिया सिर्फ संपन्नता या खुशहाली को दिखाता है। वह अभाव, हताशा या पिछड़ापन नहीं दिखाता। इसलिए समाज में केवल इसी पर बात होती है।

अब दुःख-तकलीफ पर बात करना पिछड़ापन मान लिया गया है, लोगों के चर्चा के केंद्र में भौतिक संसाधन और सम्पन्नता है। बाजार ने धीरे-धीरे बदलाव के सारे अभियान तेज कर दिए हैं भीतर मौजूद प्रतिरोध के धार को भोथरा कर दिया है। हम तमाम संघर्ष भटक से गए हैं क्योंकि शत्रु और उसके लक्ष्य को पहचानने में चूक हुई है। फिर सूचना और संचार के तमाम माध्यमों के जरिए विचार के खिलाफ एक माहौल बनाया गया है। कवि महसूस करता है कि चुनौतियां बेहद कठिन हैं। तमाम संघर्षों को फिर से धार देने की जरूरत है। और इसके लिए एक नई गोलाबंदी चाहिए। बहरहाल तमाम चुनौतियों के बीच कवि अपने स्तर पर प्रतिरोध नहीं छोड़ता। बाजार के दबाव को साफ नकार देना ही आज सबसे बड़ा प्रतिरोध है। और यहीं से किसी भी संघर्ष की शुरुआत हो सकती है। मंगलेश के शब्दों में ताकत की दुनिया में जाकर मैं क्या करूंगा। मैं सैकड़ों हजारों जूते चप्पल लेकर क्या करूंगा। मेरे लिए एक जोड़ी जूते ठीक से रखना कठिन है। ताकत की दुनिया जाहिर है आज जब हर कोई शक्ति और संपन्नता हासिल करने के खेल में लगा है, ताकत की दुनिया को व्यर्थ समझना एक बड़ा साहस है। 'बाजार से गुजरा हूं खरीदार नहीं हूं' का यह जज्बा आज का एक्टिविज्म है। यहीं से बाजार को चुनौती देने या उससे मुठभेड़ की शुरुआत हो सकती है। मंगलेश डबराल दृढ़तापूर्वक अपनी पूरी सामर्थ्य के साथ बदलती सामाजिक, राजनैतिक, शोषक, विसंगतिपूर्ण व्यवस्था का पुरजोर प्रतिरोध करते हैं, बाजार को नकारते हैं और उसे कठघरे में खड़ा करते हैं। सवाल, सादागी, शालीनता और संवेदनशीलता और मूल्यों के प्रति निष्ठा मंगलेश डबराल की ताकत है।

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
महर्षि दयानंद कॉलेज परेल, मुंबई - ४०००१२

आकलन

● डॉ. शैलेशकुमार दुबे

‘कवि का अकेलापन’ : मंगलेश डबराल

‘कवि का अकेलापन’ काव्य-संग्रह में कवि मंगलेश डबराल ने अपने मनपसंद कवियों की रचनाओं का समीक्षात्मक अवलोकन प्रस्तुत किया है। जिसमें उन्होंने रचनाकार के प्रत्येक रचनात्मक पहलुओं पर प्रकाश डाला है। कवि का अकेलापन दो हिस्सों में बँटा हुआ है। पहले हिस्से में मंगलेश अपने कुछ प्रिय कवियों की रचनाओं, उनकी पंक्तियों को खोलते हुए उनके अर्थ-स्तरों और उस भावभूमि तक पहुँचने की कोशिश करते हैं, जहाँ से वे पंक्तियाँ अवतरित हुई होंगी और ऐसा करते हुए वह अलग-अलग स्थितियों, विषयों और विचारों के संदर्भ में उस कवि के और साथ ही स्वयं अपनी सोच और कल्पना को उघाड़ते हैं। यह हमें एक साथ दो-दो कवियों के भीतरी लोक में समाहित काव्यात्मक स्पंदन और विमर्श के संसार की अद्भुत छवियाँ दिखाता है। दूसरे हिस्से में कवि की बेतरतीब डायरी है। यह डायरी एक बेचैन व्यक्ति, एक आम नागरिक, एक पुत्र, एक दोस्त, एक संगीत-प्रेमी और इन सबसे थोड़ा ज़्यादा एक कवि के रूप में मंगलेश डबराल को हमारे सामने खोलने का काम करती है और अंततः हम यह सोचकर विस्मित हुए बिना नहीं रह पाते कि एक कवि अपने अकेलेपन में किस तरह अपने चारों ओर फैले दृश्यों, बदलाओं, अदृश्य दबावों, विस्मृतियों, तकलीफ़ों की नज़र न आने वाली वजहों और न जाने कितने ही दूसरे अमूर्तों की शिनाख्त कर उन्हें मूर्त कर सकता है। अगर इसी किताब में प्रयुक्त शीर्षकों की मदद से कहा जाए तो यह असमय के बावजूद, प्रसिद्धि के उद्योग और बर्बरता के विरुद्ध एक कवि का लौटते हुए पूर्णतर होते जाना है। (कवि का अकेलापन : मंगलेश डबराल फ्लैप से)

कवि का अकेलापन में कवि मंगलेश डबराल ने बहुत ही सार्थक साहित्यिक टिप्पणियाँ कवियों पर की हैं। जिसके माध्यम से उन्हें तथा उनके काव्य की बारीकियों को समझने में आसानी होती है तथा उनके काव्य के प्रयोजन पर प्रकाश डाला जा सकता है। डबराल जी के शब्दों में कहें तो कवि का अकेलापन में संकलित ये साहित्यिक सांस्कृतिक टिप्पणियाँ किसी न किसी आकस्मिक दबाव या माँग के तहत लिखी गयी हैं। कुछ समय पहले जब कथादेश के संपादक हरिनारायण ने प्रमुख समकालीन कवियों की रचनाएँ छापना शुरू किया था तो उन पर मैंने कुछ टिप्पणियाँ लिखी थीं जिनका मकसद यह था कि अपने प्रिय कवियों को सबसे पहले अपने लिए समझ सकूँ और यह जान सकूँ कि ये कविताएँ मेरी संवेदना में नया क्या जोड़ रही हैं। कवियों का मूल्यांकन करना या उन्हें समीचीन

किसी कसौटी पर कसना उनका उद्देश्य न तब था और न अब है। वे सिर्फ कविता के गुणगान की तरह लिखी गई हैं और अगर हमारे समय के किसी कवि की आलोचनात्मक पड़ताल करते समय इनमें से कोई टिप्पणी कुछ काम आ सके तो यही इनकी सार्थकता होगी। इसी क्रम में मैं अपने प्रिय कई और कवियों विनोद कुमार शुक्ल, चन्द्रकान्त देवताले, विष्णु खरे, गोरख पाण्डेय, इब्बार रब्बी, मनमोहन, निर्मला गर्ग, अनीता वर्मा, नीलेश रघुवंशी, देवीप्रसाद मिश्र, लीलाधार मंडलोई, कुमार अंबुज आदि पर भी लिखने की सोचता था लेकिन ऐसा कोई संयोग नहीं बन पाया। (कवि का अकेलापन : मंगलेश डबराल, पृष्ठ क्रमांक ०७)

चन्द्रकुँवर बर्त्वाल की वसीयत लेख में कवि मंगलेश डबराल ने अपने मनपसंद कवि चन्द्रकुँवर बर्त्वाल के कवि कौशल पर प्रकाश डाला है। उनके कविता के विषय को सामाजिक विश्लेषण से जोड़ा है। उनकी तुलना अन्य कवियों से भी की है। कवि मंगलेश डबराल के मतानुसार चन्द्रकुँवर बर्त्वाल ने नारी की दशा का चित्रण बहुत ही सटीक किया है। कितनी बंजर है यह सुख और शांति और कैसी अद्भुत मर्मगत कविता है और कितने सरल, कितने मामूली शब्दों में वह एक भीषण यथार्थ को व्यक्त कर जाती है और कैसे पुरुषवादी मूल्यों पर प्रहार करती है और किस तरह एक स्त्री के जीवन की पूरी कथा कह देती है! शायद यह नागार्जुन, त्रिलोचन, रघुवीर सहाय या सर्वेश्वर दयाल सबसेना में से किसी की रचना हो सकती थी। शायद हमारी पीढ़ी के कई कवि इस कविता को लिखना चाहते। शायद यह महिला कवियों का प्रिय विषय होता। शायद मैं ही इस कविता को लिखता। लेकिन चन्द्रकुँवर बर्त्वाल जैसा अकाल-कवलित, उत्पीड़ित-उपेक्षित कवि बहुत पहले ही इसे हमारे और हमारे बाद आनेवालों के लिए लिख चुका है। ऐसी कितनी ही कवितायें हैं, जो एक अनूठी वसीयत के रूप में चन्द्रकुँवर हमारे लिए छोड़ गए हैं। (कवि का अकेलापन : मंगलेश डबराल, पृष्ठ क्रमांक १८)

शमशेर का मतलब लेख में कवि मंगलेश डबराल ने हिन्दी जगत के आलोचकों के अनुदार रवैये पर प्रश्न चिन्ह लगाया है। शमशेर का मूल्यांकन वे एकपक्षीय तरीके से करते हैं। पूरे का पूरा शमशेर किसी को स्वीकार्य नहीं। वह हमें मानवीय संपूर्णता का सम्मान करना सिखाते हैं। संपूर्णता शमशेर की कविता का मूल कथ्य है। एक कविता में वे अपनी यह चिंता भी व्यक्त करते हैं कि हमारे समय को एक काश की तरह काट दिया गया है। उनकी कविता में सौन्दर्य और प्रेम की सतत खोज इसी संपूर्णता की खोज है। हम आधुनिक किस्म के कवि लोग जो मनुष्य की कमियों की कविता लिखते हैं, यह देखकर हैरान हो सकते हैं कि शमशेर जो कुछ खंडित और अपूर्ण है उसे प्रायः अपनी रचना का विषय नहीं बनाते। अज्ञेय के लिए लिखी एक कविता में वे कहते हैं— जो कि नहीं है ... उसका क्या गमा जो है शमशेर की कविता उसकी पूर्णता और अच्छाई की आहटों से भरी हुई है। शमशेर नाम के इंसान के करीब रह चुके लोग जानते हैं कि वे खुद भी अपनी कविताओं की तरह थे। (कवि का अकेलापन : मंगलेश डबराल, पृष्ठ क्रमांक २१) दुख को रोज समझना पड़ता है लेख में कवि मंगलेश डबराल ने रघुवीर सहाय के काव्य का बहुत सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत किया है। उन्होंने करुणा को विचार में बदला। अतः उनसे बड़ा हिन्दी का पक्षधर मिलना संभव नहीं। रघुवीर सहाय ने प्रकृति, धूप, पेड़, फूल, खुशबू, पानी के कई संस्मरणों और प्रेम पर भी कविताएं लिखी समीचीन

हैं और उनका पहला संग्रह 'सीढ़ियों पर धूप में' की कई ऐसी कविताओं को पढ़ना भी उतना ही सुखद है 'आत्महत्या के विरुद्ध' में।

— देखो वृक्ष कुछ रच रहा है,
किताबी होगा वह कवि जो कहेगा,

हाय पत्ता झर रहा है' जैसी अमर पंक्तियाँ पेड़ के बारे में हैं। (पृष्ठ क्रमांक २८)

बर्बरता के विरुद्ध में कवि मंगलेश डबराल ने नागार्जुन के विचारों और उन्हीं की कविताओं व्याप्त समाजिकता का खाका खींचने का सफल प्रयास किया है। अंतिम अंश में बुढ़े, खोपड़ी, खूसट, गू, खबरदार साले जैसे फूहड़ शब्द क्यों हैं? इसलिए कि पतित होते मध्यवर्ग की मानसिकता ऐसी ही भाषा से भरी हुई है। वह इसी तरह व्यक्त होती है। उसमें वह ग्लानि समाप्त हो चुकी है जो पूर्ववर्ती अंश में जियो बेटा प्रेम प्रकाश, बूढ़ी दादी, बीमार अब्बाजान, नन्हे-मुन्ने जैसे शब्दों में व्यक्त हुई है। नागार्जुन जैसे एक समाजशास्त्री की तरह यह सब दिखलाते हैं। निजी तौर पर देखे गये एक दृश्य के वर्णन को वे सहसा पहले एक आत्म-साक्षात्कार और फिर सामाजिक परिदृश्य में बदल देते हैं। कविता की ये तीन उड़ानें एक व्यक्ति के जरिये पूरे समाज का हाल बतला देती हैं। (कवि का अकेलापन : मंगलेश डबराल, पृष्ठ क्रमांक ३४ एवं ३५)

'लौटते हुए पूर्णतर' में कवि मंगलेश डबराल ने कुँवर नारायण की काव्य धारणा पर विशेष चर्चा की है। उनके अनुसार नैतिक ही राजनैतिक है। उन्हें समझने के लिए उनकी कविता के ऐतिहासिक संदर्भों समझना अति आवश्यक है। हिन्दी में कुँवर नारायण की उपस्थित इसलिए भी अर्थपूर्ण है कि जब यथार्थ में उम्मीद लगातार खत्म हो रही हो तो उनकी कविता उसे मनुष्य की कल्पना में, उसके चिंतन में बचाये रखती है। शब्दों की तरफ से दुनिया को देखते हुए वे अपने कवि-कर्म को इस तरह परिभाषित करते हैं :

— किसी भी शब्द को,
आतशी शीशे की तरह,
जब भी घुमाता हूँ आदमी, चीजों या सितारों की ओर,
मुझे उसके पीछे,
एक अर्थ दिखाई देता है,
जो उस शब्द से कहीं बड़ा होता है।

हमारा समाज आज जिस सांस्कृतिक गिरावट, नैतिक और भाषिक अवमूल्यन और नकारात्मक वृत्तियों का शिकार है, हिंसा और सांप्रदायिकता के जिस मनोरोग से वह ग्रस्त हो रहा है और संवेदनशील लोग जिस हताशा में छटपटाते या गुमसुम जी रहे हैं उसे देखते हुए शब्दों के ये आतशी शीशे, जो कभी आईने भी बन जाते हैं, बेहद कारगर हैं। मनुष्य के हित में पूर्णतम नहीं, बल्कि पूर्णतर होकर लौटते और इस तरह दूसरों के लिए भी पूर्णतर होने की गुंजाइश छोड़ते हुए कुँवर नारायण की कविता में शब्दों के ये आतशी शीशे, मनुष्यता, प्रेम और अच्छाई के पुराने आईने अब और भी ज्यादा दिखते हैं। (कवि का अकेलापन : मंगलेश डबराल, पृष्ठ क्रमांक ४१)

बस्ते की तरह लदी हुई धरती में कवि मंगलेश डबराल ने लीलाधार जगूड़ी का साहित्यिक समीचीन

मूल्यांकन किया है। वे मानवता के पक्षधर हैं। उनकी कविता की भाषा बहुत से आयाम लेकर प्रहार करती है। लीलाधार जगूड़ी का काव्य एक आश्चर्यलोक की तरह है। एकबारगी वह चकित-भ्रमित करता है। वह एक पेचीदा संसार है जिसमें बहुत हलचल, आवाजाही, उथल-पुथल और पल-पल परिवर्तित दृश्य हैं, स्थितियों और मनोभावों की कभी गंभीर तो कभी खेल जैसी भिड़ंत है, उसकी मुद्राएँ नाटकीय हैं, भाषाई भंगिमाएँ वक्र हैं, एक साथ तुक-तान और बतुकापन है और सभी संभव काव्यगत उपकरणों और तरकीबों का इस्तेमाल करते हुए सभी संभव अनुभवों से कविता की झोली भर देने की कोशिश है। (कवि का अकेलापन : मंगलेश डबराल, पृष्ठ क्रमांक ४२)

‘चीखो नहीं अभागो’ एक गीत सुनो में कवि मंगलेश डबराल ने ऋतुराज के साहित्यिक सरोकार पर कलम चलाई है। उनकी कविता लीक से हटकर है। मानवीय सच को उजागर करती है। ऋतुराज हमारे सत्ता-केन्द्रित साहित्यिक समय में हिन्दी प्रदेश के शहरी काव्य व्यापार और मुख्य धाराओं से दूर कहीं रेतों-ढूहों-जंगलों के निवासी हैं जो किसी अन-हद जगह में अपना अलख जगाए रहते हैं और ‘एक आज्ञाद आदमी की मौत’ शीर्षक अपनी कविता के जरिये हमें यह सूचना देते हैं कि जंगल में शहद के अब भी ऐसे गुप्त ठिकाने हैं...जिनका पता नहीं है सेना और पुलिस को। जहां हाकिम बिना मेरे बतलाए कभी नहीं पहुँच सकता! आश्चर्य यह है कि ऋतुराज की कविता में जीवन के मूल्य तत्त्वों की तरह उपस्थित इन गुप्त ठिकानों के बारे में हिन्दी आलोचना में बहुत कम चर्चा हुई है और उन्हें उसी तरह हाशिये पर मान लिया गया जैसे हमारी शहरी समाज व्यवस्था में खुद वनवासियों को माना जाता है जो कभी सिर्फ हमारे जीवन में साज-सज्जा, समारोह या प्रदर्शन बनकर प्रकट होते हैं या हम कभी-कभी अपने जीवन में किसी अभाव की पूर्ति के लिए उन्हें याद करते हैं। (कवि का अकेलापन : मंगलेश डबराल, पृष्ठ क्रमांक ४७)

‘जीवन का कवि’ में कवि मंगलेश डबराल ने आलोकधन्वा के काव्य कौशल को उकेरा है। उनकी कविता जीवन की सरलता को स्थापित करती है। वे संघर्ष और सौन्दर्य को पूरक मानकर चलते हैं। हिन्दी कविता में प्रचलित बहसों भी शायद काफी हद तक आलोक की कविता के संदर्भ में अप्रासंगिक हैं। गाँव बनाम शहर, प्रेम बनाम राजनीति, आधुनिकता बनाम परंपरा, जातीय स्मृति, कथ्य और फ़ॉर्म जैसे खानों में उनकी कविता का अंत पाना असंभव है क्योंकि वह सबसे पहले खानों और विभाजनों को तोड़ने का काम करती है। अपने ही शिल्प का शिकार हो जानेवाले कवियों के विपरीत आलोक की कविता दरअसल अपने को लांघ लेती है। अपने बिंबों और रेटॉरिक को पार करती हुई वह संवेदना के उच्चतर धरातल पर हमसे भी एक तीखी संवेदना की मांग करती है। उनकी इधर लिखी कविताओं में से एक खास तरह की वर्णनात्मकता आई है और उनके बिम्ब पिघलकर विवरणों की शक्ल लेने लगे हैं। आलोक की कविता का यह विकास उनकी संवेदना का एक नया, खुला, विस्तीर्ण मैदान होगा। (कवि का अकेलापन : मंगलेश डबराल, पृष्ठ क्रमांक ५३)

‘अजीवित भी जीवित है’ में कवि मंगलेश डबराल ने नरेश सक्सेना के काव्य के मूल कथ्य की विवेचना की है। वे अपनी कविता में विज्ञान का उपयोग करते हैं। उनकी कविता सहज साधारण

जीवन को रेखांकित करती है। नरेश सक्सेना के पहले कविता संग्रह समुद्र पर हो रही है बारिश की अडसठ में से कम-से-कम पच्चीस कवितायें ऐसी वस्तुओं के विषय में हैं जिन्हें निर्जीव और जड़ माना जाता है। उनमें से कुछ के शीर्षक कुछ इस प्रकार हैं : रोशनी, धातुएँ, लोहे की रेलिंग, ईंटें, मेज़, दांतों के कीड़े, कांक्रीट, घास, लालटेन, सीढ़ी, पानी, पृथ्वी, समुद्र, ओड़ के खंडहर, जूते, रेत उड़ रही है, फूलों का रोना, गोल पत्थर, सीमेंट, नावें, नदी, नक्शे, हंसी आदि। इनके अतिरिक्त जिन कई कविताओं के नाम वस्तुवाचक नहीं हैं वे भी वस्तुओं के बारे में, मसलन नमक और लोहे, पुल और नदी, समुद्र और बारिश, नीम के पेड़ और छायाओं, समुद्र और रेगिस्तान, सूखे हुए पत्तों, तिनकों और कागज़ के टुकड़ों और कई जगह तो मृत देहों तक के बारे में बतलाती हैं। (कवि का अकेलापन : मंगलेश डबराल, पृष्ठ क्रमांक ५४)

अंतर्धारा और अंतर्पाठ में कवि मंगलेश डबराल ने सुदीप बॅनर्जी की कविता पर विचार - विमर्श किया है। वे विराग में से जीवन का राग खोजने का प्रयास करते रहें हैं। उनकी कविता की भाषा लीक से हटकर है।

इसके अतिरिक्त कवि का अकेलापन पुस्तक में कवि मंगलेश डबराल ने अवसाद लोक में असद जैदी, 'असमय के बावजूद' में नरेंद्र जैन, 'नगण्यता का गुणगान' में वीरेन डंगवाल, 'पूरा मनुष्य न हो पाने का दृश्य' में विजय कुमार, 'कविता की सकर्मक क्रियाएँ' में कात्यायनी, 'सूत की डोरी लंबी है' में गौहर, 'कविता में उम्मीद' में ऋतुराज, 'खोये हुए सामान के डेढ़ सौ वर्ष' में असद, 'कवि का अकेलापन' में स्वयं (मंगलेश डबराल), 'रिक्त स्थानों की कविता' में कई कवियों की चर्चा, पवित्र जगह से वंचित में कविता की विचारधारा व विरोध का चित्रण, 'गद्य कविता नहीं' में कविता के रचना शिल्प पर विमर्श, 'पुस्तक का रुदन शुरू होता है' में किताबों की दशा का वर्णन, 'है और नहीं है' में हिन्दी भाषा और बुद्धिजीवियों की कड़वी सच्चाई का चित्रण, 'महाश्वेता का महत्त्व' में महाश्वेता देवी की चर्चा, 'संकिची का हिरोशिमा' में जापानी कवि संकिची के दर्द का चित्रण, रामकुमार की 'पृथ्वी' में रामकुमार, 'नायक-अनायक गैलीलियो' में ब्रेष्ट की रचनाओं पर चर्चा, 'जहां एक रेल आकर रुकती है' में कुछ महत्त्वपूर्ण फिल्मों पर विमर्श, 'स्वर्ग में आग और आँसू' में संजय काक की वृत्तफिल्म जश्रे-आज़ादी पर समीक्षात्मक अवलोकन, 'कलाकार प्रचार बाज़ार' में भारतीय कला व उसकी स्थिति पर चर्चा, 'क्या सौंदर्य एक क्रीम का नाम है' में बाज़ार, सुंदर और असुंदर की विवेचना, 'प्रसिद्धि एक उद्योग' में प्रसिद्धि के सच को सच्चाई से बताया गया है तथा 'मरना भी रहना है' (एक बेतरतीब डायरी) में कवियों और जीवन दर्शन से संबन्धित बिन्दुओं पर लेखक ने अपना नज़रिया प्रस्तुत किया है।

सहायक,
आचार्य,
एस.ई.ई.एस. महाविद्यालय
शीव, मुंबई

आकलन

● डॉ. मिथिलेश शर्मा

कवि के कैनवास पर अमेरिका

मंगलेश डबराल ने जहाँ काव्य के क्षेत्र में अपनी एक अलग पहचान बनायी है वहीं गद्य साहित्य में भी उन्होंने अपना पृथक अस्तित्व बनाया है। यद्यपि, उनका गद्य साहित्य विपुल मात्रा में नहीं है तथापि जो है वह कविता की तरह जीवंत और अर्थपूर्ण है।

‘एक बार आयोवा’ १९९६ में प्रकाशित एक यात्रा संस्मरण ही है। जिसमें लेखक ने अमेरिका के रीति-रिवाज, वहाँ का समाज वहाँ की संस्कृति, भाषा, साहित्य आदि का चित्रण बखूबी किया है।

मंगलेश डबराल अमेरिका के ‘आयोवा’ विश्वविद्यालय के अंतरराष्ट्रीय कार्यक्रम में करीब दो माह के लिए भाग लेने के लिए गए थे। काफल पानी गाँव से दिल्ली होते हुए आयोवा और न्यूयार्क तक अपने तन, मन और कर्म से सभी को अपनी ओर आकर्षित कर लिया।

मंगलेश ने अपने इस यात्रा वृत्तांत में अमेरिका के बारे में जो भी बयान किया है, उसका चित्र हमारे सामने दिखाई देता है। जैसे उपभोक्तावाद, यौन स्वातंत्र्य, यौन विकृतियाँ, समलैंगिकता व अमेरिका की राजनीतिक एवं आर्थिक स्थिति।

मंगलेश के आवास निवास की व्यवस्था अन्य लेखक व कवियों के साथ आयोवा में ही मैरी नाजरेथ ने की थी किंतु सेपरेट रूप में। जरूरत की सभी चीजें वहाँ उपलब्ध थीं। अमेरिका और भारत के समय में साढ़े ग्यारह घंटे का फर्क है। डबराल जी के शब्दों में ‘यह सुनकर अच्छा ही लगा कि अमेरिका समय के सामने भारत से काफी पीछे है।’^१ आयोवा शांत व सुंदर छोटा-सा शहर है। रात को अलार्म न लगाने के कारण पता ही नहीं चला कि कितने बजे हैं? लेखक ने सुबह उठकर, कमरे के पर्दे हटाकर देखा तो सामने रंगीन जंगल इतना सुंदर दिखायी दिया कि कांच से होकर अंदर कमरे में प्रवेश कर गया हो। यह पोप्लार का जंगल है। इसके दूसरी तरफ आयोवा नदी है जो शांत बहती रहती है। लेखक के ठीक सामने के कक्ष में अमेरिकी कवि केरीकीज ठहरे हुए हैं। लेखक की मित्रता वाशिंगटन में ही उनसे हो गयी थी। उनकी वेशभूषा अलग प्रकार की थी। गले में कई तरह की मालाएँ डाले हुए, शेरदांत का तावीज तो ब्राजील से लायी हुई अंगुठी पहने हुए, लंबे बाल जिनकी चोटी

बनी है। विचित्र हुलिया पर दिल के बहुत अच्छे हैं”^२ उनके परिचय में मंगलेश ने कहा है- “वे कभी भारत भी रहे और अपने को गोपियां कहते हैं, गोपी और पिया को मिलाकर बनाया हुआ विशेषण”^३ मंगलेशजी ने अमेरिका की संस्कृति व विचारों के खुलेपन को भी इस कृति में निसंकोच दर्शाया है। अमेरिका में बात-बात पर पार्टी करने का प्रचलन है। पार्टी में संगीत, नाच-गान, बीयर सब चलता है। स्वयं डबराल जी भी एक शास्त्रीय संगीत की पार्टी में जाते हैं वहाँ पोलैंड के कवि उर्षुला केजिओव के आग्रह पर गाया भी जबकि ‘मैंने कहा- मैं गायक नहीं हूँ, कवि हूँ’^४ इस बात पर किनलैंड की एक स्वीडी कवि तूआ और नींदरलैंडस की नारीवादी उपन्यासकार रेनाते ने कहा- “तब तो आप बढ़िया कवि होंगे” मैंने कहा, पता नहीं”^५ जाते जाते दोनों ने चुंबन लेने का आग्रह किया। मैंने उनके गालों को एक बार चूम लिया। उन्होंने कहा-तीन बार। यह हमारे यहाँ की रस्म है”^६ जबकि, लेखक इन दोनों के लेखन से अपरिचित है।

मंगलेशजी ने अन्य भारतीय लेखकों की तरह न तो चुंबन लेने में संकोच किया और न ही उसे कहने में। अपनी स्पष्टवादी सोच के कारण जो उन्होंने देखा, जो अनुभव किया व जो स्वयं किया उसका यथार्थ वर्णन इस यात्रा संस्मरण में किया है। उन्होंने लिखा है- “अमेरिका आकर पहली बार मैंने इतनी बीयर पी। ... बीयर खत्म होती तो सिगरेट पीने लगता और सिगरेट बुझती तो बीयर पीने लगता।” ... “मैंने तय किया है कि न गोमांस खाऊंगा न सूअर का मांस। सो, चिकन पकाता खाता हूँ”^७

लेखक अपने देश से बहुत प्यार करता है पर देशवासियों की सोच में जो बुराई है, उसे कहने से भी नहीं चूकता। एक बार डेनियल बाइसबोर्ट के घर पार्टी थी। उनकी पत्नी ने कहा कि ‘भारत भवन’ के एक कार्यक्रम में वे बाइसबोर्ट के साथ भारत गयी थी।”^८ पर उन्हें अच्छा नहीं लगा, ‘लोग मुझे कुछ अभद्र लगे।’ तभी मंगलेश जी के एक और घटना याद आयी जो क्रिस्टीमेरिल ने सुनायी थी। ‘क्रिस्टी अपने पिता की धार्मिक प्रवृत्ति के कारण, पिता के साथ भारत आयी हुई थी। जयपुर में एक होटल में ठहरी हुई थी। नाश्ता के लिए होटल में गयी तो कुछ मन चले लोगों ने पिता के बारे में कुछ ऐसे कोरश जुमले कहने शुरू किये। जिससे पता चलता है कि ‘उनके दिमाग किस कदर यौन विकृतियों से सड़े हुए हैं।’^९

यह बात अलग है कि क्रिस्टी के पिता हिंदी नहीं जानते थे और उनके लिए भारत एक ‘आदर्श देश’ बना रहा। मंगलेश डबराल ने अमेरिका के जीवन को गहराई से समझने की कोशिश की और अपने संस्मरणों के माध्यम से उसे यथावत दर्शाया भी। उनका यह पर्यवेक्षण अमेरिका के वर्तमान स्वरूप की चितवन रखने में काफी सफल भी रहा। मंगलेश जी का यह अनुभव रहा कि अमेरिकी लोग ज्यादा भावनाओं में नहीं बहते। वे अपने काम के प्रति ईमानदार व कर्मनिष्ठ होते हैं। विपत्ति के समय भी उनके चेहरे का अर्थ उनके यहाँ पराजय है। यद्यपि, इन लोगों का अपना कोई इतिहास नहीं है पर इसका उनके मन पर कोई बोझ भी नहीं है। ये वर्तमान में जीते हैं, इनके पास आज का सही अर्थ होता है। किसी अमेरिकी से यदि पूछा जाए कि - ‘हाउ आर यू?’ तो जवाब मिलेगा, ‘एब्सल्यूट

फाइन'। या 'फीलिंग ग्रेट', मुझसे कोई पूछता है तो मैं कहता हूँ, 'ऑलमोस्ट फाइन' शायद कुछ लोगों को मेरा यह जवाब अच्छा भी नहीं लगता पर मैं 'थैंक्यू' कहना नहीं भूलता। मंगलेश जी ने अपनी कवि प्रवृत्ति का परिचय देते हुए, एक और उदाहरण प्रस्तुत किया है-

— अमेरिका में रोना मना है,
उदास होना मना है
एक बहुत बड़ी आँख सबको देख रही है
पीछे मुड़कर जीवन को देखना मना है।^{१०}

मंगलेश जी को 'आयोवा' यात्रा के दरम्यान अमेरिका के बारे में एक और नई बात पता चलती है कि यहाँ बहुत जल्दी ही कंपनियाँ अपनी चरम सीमा पर पहुँचकर, अच्छा मुनाफा कर लेती हैं। पर शीघ्र ही वह नष्ट भी हो जाती है। उनका वापसी हवाई टिकट अमेरिका की एक बड़ी 'पैनएम' कंपनी का था जो हाल में दिवालिया हो गयी थी। उनका कहना है— अमेरिका में यह होता रहता है कि कोई कंपनी पराकाष्ठा पर पहुँच कर किसी रहस्यमय ढंग से नष्ट हो जाती है और जो नष्ट हो रहा है पूंजीवादी व्यवस्था उसके विनाश की गति को तेज ही करती है।^{११}

मंगलेशजी की इस यात्रा वर्णन में कई साहित्यकारों से मुलाकात होती है। उनके साथ तर्क-वितर्क, चर्चा, भाषण एवं साहित्य संबंधी कुछ रोचक जानकारियाँ भी प्राप्त होती हैं। साथ ही लुई सिंप्सन जैसे कवियों की कविताओं द्वारा अमेरिकी जीवन के हर पहलू को नए ढंग से देखने व समझने का सुअवर भी मिलता है।

जैसे- "सपने में मेरा जीवन मेरी तरफ आया,

और, मेरे प्रेम भी जो हिरनियों की तरह छरहरे-नाजुक थे।"^{१२} यहाँ मंगलेश जी एक और बात स्पष्ट करते हैं कि अमेरिका के लोग भी सपना देखते हैं पर उनके सपनों में यथार्थ अधिक होता है। 'वह रूस के ऊपर उड़ने के सपने देखते हैं, एशिया में कूद पड़ने के सपने देखते हैं।' उनके सपनों में भी आगे बढ़ने की उड़ान होती है। और हम भारतीयों के सपनों में भय की स्थिति होती है। यही अंतर होता है, हमारे उनके बीच। यथार्थ जीवन की झलक अमेरिका की कवयित्री उर्बुला की 'सफेद तितली' कविता में भी दृश्यमान है। उर्बुला की यह कविता अंग्रेजी में छपी जिसमें पेड़ जंगल, सूर्योदय आदि के कुछ प्रयोगशील छायाचित्र भी हैं। 'सफेद तितली' कविता में प्रेम, श्रृंगार, लालसा के ऐंद्रिक संसार और यथार्थ की ठोस दुनिया का अजीब विडंबनात्मक रिश्ते के साथ-साथ, औरत की स्थिति एवं नियति के भी दर्शन हुए। उर्बुला की एक और कविता का ध्यान मंगलेश जी को आता है जो रूमानी ख्यालों की है-

"बीत गया एक दिन
तब भी हम रहे अनजान,
गोया वह अभी आया ही नहीं हो।"^{१३}

इसी प्रकार मंगलेशजी को हेयोन की कविताओं में 'लोमड़ी' पसंद आयी जिसमें अमेरिका को समीचीन

एक नए रूप में प्रस्तुत किया है। इस कविता में आध्यात्मिक चिंतन के साथ चित्रकला का भी सुंदर समावेश है —

“कितनी ही देर खड़ी रही मैं वहाँ,
बेदम सी
कैनवस में खींचकर लायी गयी
उस भौंकती लोमड़ी को देखती
चकित होती
ईश्वर ने बना दिया क्यों
इस संसार को अपना जाला”^{१४}

‘एक बार आयोवा’ को डबराल जी ने न सिर्फ वर्णनात्मकताशैली तक ही सीमित रखा बल्कि उसे रोचक प्रसंगों द्वारा औपन्यासिक शकल देने में भी कोई कमी नहीं रखी। उनकी यह कृति प्रत्येक स्थल पर लेखक की मौजूदगी का अहसास कराती हुई, अनुभव और यथार्थ का समिश्रण बनाकर उनके कवि हृदय होने का संकेत भी देती है। गद्य में पद्य की आशंका — बाहर एक काली रात है। रात का एक मुंह है जिससे तीखी छू छू करती हवा आती है और बर्फ का सर्द उजास है जिसमें पेड़ खंडहरों की तरह खड़े दिखते हैं या यतीमों की तरह अपने काले कंकाल जैसे हाथ उठाये हुए। इन पेड़ों पर एक भी पत्ता नहीं बचा है। उनके बीच से एक आवाज़ या चीख ऊपर तक आती है। क्या वे रात में रोते हुए पेड़ हैं या कोई भटका हुआ जंगली जानवर या मदद के लिए पुकारती कोई आर्त आवाज़/ इस गहरी रात में क्या कोई सांस ले रहा है?’^{१५}

मंगलेश जी के इस यात्रा संस्मरण को पढ़कर पाठक वर्ग के सामने, अमेरिका को विविध रूपों में जानने का अवसर प्राप्त होता है। साथ ही अमेरिका में रह रहे लोगों की सोच से भी लेखक अवगत कराता है। उनमें नैतिक संकोच, बौद्धिक असमंजस और संदेह के लिए कहीं कोई स्थान नहीं है फिर भी है तो वह मनुष्य ही। अतः भावनाओं की धड़कन का स्पन्दन उनके हृदय में भी है। इसका आभास कवि हृदय को होता है। वह कहता है —

— वह किस्सा किसे नहीं मालूम
कि आलीशान दुकान में सामान बेचती
एक दुबली सी लड़की
जो कुछ सोचती हुई सी बैठी थी
एक दिन एक ग्राहक के सामने मुस्कराना भूल गयी
शाम को उसे नौकरी से निकाल दिया गया
यह बात जब उसका पति उससे अलग हुआ
उससे एक दिन बाद की है।”^{१६}

अमेरिकी संस्कृति दूर से देखने पर जितनी अच्छी लगती है उतनी ही पास से देखने पर दर्द भरी

भी है। वाशिंगटन के सी. के. अरोड़ा ने मंगलेश जी को बताया कि अमेरिका में बूढ़े लोगों का जीवन बिताना बड़ा ही कठिन है। यहाँ साथ रहने की परिकल्पना भी नहीं है। सब आत्मनिर्भर व स्वतंत्र जीवन जीने की इच्छा रखते हैं। प्रायः अमीर बूढ़े दंपति जब अकेले हो जाते हैं तो उपनगरों के बड़े घरों को बेचकर शहरों में फ्लैट खरीद लेते हैं ताकि उन्हें सार-संभाल में आसानी हो। पर जो गरीब बेघर बूढ़े होते हैं उनका जीवन नारकीय बन जाता है। टी. वी. पर दिखाये गये कार्यक्रमों और अपने अनुभवों के आधार पर मंगलेश जी ने एक 'कोलाजनुमा' कविता लिखी। जिसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं —

— वे नौजवान नर और मादा शरीर
जो चेहरे पर असमय आती झुर्रियों से परेशान हैं।
एक विशाल शतरंज पर तैनात
एक दूसरे को मात देने का खेल खेलते हैं
बच्चों के बारे में एक झगड़ा है
कि आखिर उन्हें कौन चाहता है?''^{१७}

मंगलेश जी अमेरिका की जीवनशैली, साहित्य, संस्कृति प्रकृति तथा आर्थिक, राजनैतिक पहलुओं को जानने की उत्सुकता के कारण अमेरिका गए तो थे पर शीघ्र ही उनका मन भारत में आने के लिए बेचैन होने लगा। वह अपने इस यात्रा संस्मरण में लिखते हैं- “मैं यहाँ ज्यादा नहीं रहना चाहता। मैं लौटना चाहता हूँ। कविताएँ, भाषण, बहस, किताबें, बार, रेस्तराँ, मिसिसिपी नदी, पार्टियाँ, हँसी-खुशी, दाँतदर्द, प्रेम, अकेलापन, मित्रता, रातभर जागरण... 'सकल करम करि थकिहुं गुसाईं'”^{१८} इससे मालूम होता है कि डबराल जी को अपनी मातृभूमि व अपना घर बार-बार याद आने लगता है और वह लौटना चाहते हैं।

डबराल जी को अमेरिका में अनुकरण की प्रवृत्ति अधिक दिखाई दी। वहाँ लोग एक जैसी सोच व जीवनशैली को अधिक अपनाना चाहते हैं। यदि एक फैशन आता है तो सभी लोग वही फैशन अपनाने की कोशिश करते हैं। चाहे जींस पहनने की बात हो या फिर जॉर्जिंग करना हो। धूम्रपान विरोधी अभियान हो या एड्स से बचे रहने का अभियान हो। यह अभियान कहीं से भी शुरू हुआ हो पर उसका अनुकरण पूरा अमेरिका करता है। अर्थात् यहाँ एक विशेष प्रकार की समरूपता का बोलबाला है। इस प्रकार यह यात्रा वृत्तांत केवल एक पुस्तक ही नहीं है, अपितु भूमंडलीयकरण के इस दौर में पाठकों के समक्ष अमेरिकी जीवन का काला-सफेद दृश्य उकेरता है। इस यात्रा वृत्तांत के साथ यात्रा करते हुए मंगलेश जी ने अपने ढंग से अमेरिका के वास्तविक जीवन को समझने-समझाने का प्रयास किया है। इस पुस्तक में अमेरिका के सामान्य जनजीवन से लेकर बौद्धिक जगत से जुड़े हुए लोगों तक का वर्णन किया गया है।

‘आयोवा’ में आयोजित अंतरराष्ट्रीय लेखन कार्यक्रम में एकत्रित हुए साहित्यकारों, उनके बीच हुए वाद-विवादों की लगातार आवाजें भी इस संस्मरण में चार चाँद लगा देती हैं। यह पुस्तक

उनकी अन्य रचनाओं से अलग है। इसकी महत्वपूर्ण उपलब्धि इस कारण भी है कि यह एक 'यात्रा अनुभव' पर आधारित है। साथ ही, यह पुस्तक हमें अमेरिका के बारे में प्रमाणिक सूचनाएँ भी देती है। मंगलेश जी के संपूर्ण लेखन पर ध्यान दे तो यह कहा जा सकता है कि उन्होंने काव्यविधा के साथ, गद्य विद्या पर भी अपनी लेखनी चलाने की सफल कोशिश की है।

अतः यह 'यात्रा-वृत्तांत' ज्ञानवर्धक, विश्लेषणात्मक एवं चित्रात्मक होने के साथ-साथ रोचक भी है। इसकी भाषा काव्यमयी गद्य है। पाठक इस पुस्तक के माध्यम से घर बैठे अमेरिका के वातावरण का अनुभव कर सकता है। इसमें लेखक ने अमेरिका के कई स्थलों के सामाजिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं नैतिक परिदृश्य भी चित्रित किए हैं और उन पर सार्थक टिप्पणियाँ भी की हैं जो इस रचना को सफल और महत्वपूर्ण बनाती हैं।

संदर्भ सूची :

१. एक बार आयोवा, पृ. १५
२. वही, पृ. १५
३. वही, पृ. १५
४. वही, पृ. २२
५. वही, पृ. २२
६. वही, पृ. २२
७. वही, पृ. १७
८. वही, पृ. ८३
९. वही, पृ. २५
१०. वही, पृ. ८७
११. वही, पृ. ११
१२. वही, पृ. ११
१३. वही, पृ. ४९
१४. वही, पृ. ४८
१५. वही, पृ. ५१
१६. वही, पृ. ८७
१७. वही, पृ. ८७
१८. एक बार आयोवा-मंगलेश डबराल (पहला संस्करण-२००२), राधाकृष्ण प्रकाशन

With Best Compliments from :

Jagir Singh

4, Bela Building
Chheda Nagar
Mumbai-400089.

शीघ्र प्रकाश्य

देवेश ठाकुर रचनावली

(१४ खंडों में)

नमन प्रकाशन
4231/1, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002